

वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७

ISSN 2582-0656



9 772582 065005

વિવેક જ્યોતિ



रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

वર्ष ५९ अंक १०
अक्टूबर २०२१

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्विताय च ॥



विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित
हिन्दी मासिक

अक्टूबर २०२१; आश्विन, सम्वत् २०७८

अनुक्रमणिका

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द
व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५९
अंक १०

वार्षिक १६०/-

एक प्रति १७/-

५ वर्षों के लिये - रु. ८००/-

१० वर्षों के लिए - रु. १६००/-

(सदस्याता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें
अथवा एट पार चेक - 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर,
छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ

अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124

IFSC CODE : CBIN0280804

कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन,
एस.एम.एस., क्लाट-सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम,
पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

विदेशों में - वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;

५ वर्षों के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)

संस्थाओं के लिये -

वार्षिक रु. २००/- ; ५ वर्षों के लिये - रु. १०००/-

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर - ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१९७५३५

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com

वेबसाइट : www.rkmraipur.org

आश्रम : ०७७१ - २२२५२६९, ४०३६९५९

(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)

रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

- | | |
|--|-----|
| १. अम्बास्तोत्रम् (स्वामी विवेकानन्द) | ४३७ |
| २. पुरखों की थाती (संस्कृत सुभाषित) | ४३७ |
| ३. सम्पादकीय : मातृ-चरण सम
सुख नहीं दूजा | ४३८ |
| ४. श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और
अन्तरंग पार्षदों द्वारा दुर्गापूजा
(स्वामी तत्त्विष्ठानन्द) | ४४० |
| ५. श्रीरामकृष्ण-गीता (४)
(स्वामी पूर्णानन्द) | ४५२ |
| ६. सारगाढ़ी की स्मृतियाँ (१०८)
(स्वामी सुहितानन्द) | ४५३ |
| ७. (भजन एवं कविता) अश्विन नवरात्री
(सुन्दरलाल प्रह्लाद चौधरी),
जय माँ दुर्गे दुर्गातिनाशिनि
(डॉ. ओमप्रकाश वर्मा),
माँ तुम्हीं सत्य का द्वार
(मोहन सिंह मनराल) | ४५५ |
| ८. रामराज्य का स्वरूप (४/१)
(पं. रामकिंकर उपाध्याय) | ४५६ |
| ९. (कविता) जीवन-गति है जलधारा-सी
(डॉ. सत्येन्दु शर्मा) | ४५८ |
| १०. (बच्चों का आँगन) जनसेवा हेतु
एक बच्ची का महान त्याग
(स्वामी गुणदानन्द) | ४५९ |
| ११. भारतीय धर्मों में मनोनियह तथा
उसके उपादान (स्वामी गीतेशनन्द) | ४६० |
| १२. प्रश्नोपनिषद् (१७)
(श्रीशंकराचार्य) | ४६२ |
| १३. (युवा प्रांगण) युवा प्रबन्धकों हेतु गीता
(स्वामी सत्यरूपानन्द) | ४६३ |

१४. वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (३)	(स्वामी ब्रह्मशानन्द)	४६६
१५. उत्तराखण्ड की वैष्णवी माता दुनागिरी	(मोहनसिंह मनराल)	४६८
१६. गाँधी विचारधारा आज भी प्रासंगिक	(स्वामी निखिलेश्वरानन्द)	४६९
१७. आध्यात्मिक जिज्ञासा (७०)	(स्वामी भूतेशानन्द)	४७०
१८. गीतातत्त्व-चिन्तन - (४) (दशम अध्याय)	(स्वामी आत्मानन्द)	४७३
१९. साधुओं के पावन प्रसंग (३४)	(स्वामी चेतनानन्द)	४७६
२०. निन्दा चौकीदार		४७८
२१. समाचार और सूचनाएँ		४७९

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ में स्वामी विवेकानन्द के गुजरात भ्रमण के समय लिमड़ी के राजा ठाकुर साहेब बेहेमिया चाँद जी के साथ हुई उनकी भेंट को दर्शाया गया है।

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्यौहार

६	स्वामी अखण्डानन्द
१३	दुर्गा-महाष्टमी
२, १६	एकादशी

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखकों ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीन विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें -

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है। २. रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्टु हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो। आप अपनी रचना ई-मेल - vivek.jyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। ३. लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें। ४. आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अतः उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें। ५. पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारागर्भित और भावपूर्ण लिखें। ६. 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक की यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा। ७. 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन निःशुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति कोष/स्थायी कोष

दान दाता

श्री प्रभाकर निनावे, खरे टाऊन, नागपुर (महा.) २१,०००/-

दान-राशि

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता
६६७. ब्रजेश कुमार सिंह, गोरखपुर (उ.प्र.)

प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)

सेन्ट्रल लाइब्रेरी, डी.डी.यू. यूनिवर्सिटी, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)



विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना

मनुष्य का उत्थान केवल सकारात्मक विचारों के प्रसार से करना होगा। — स्वामी विवेकानन्द



- ❖ क्या आप स्वामी विवेकानन्द के स्वग्रों के भारत के नव-निर्माण में योगदान करना चाहते हैं?
- ❖ क्या आप अनुभव करते हैं कि भारत की कालजयी आध्यात्मिक विरासत, नैतिक आदर्श और महान संस्कृति की युवकों को आवश्यकता है?

✓ यदि हाँ, तो आइए! हमारे भारत के नवनिहाल, भारत के गौरव छात्र-छात्राओं के चारित्रिक-निर्माण और प्रबुद्ध नागरिक बनने में सहायक 'विवेक-ज्योति' को प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने में सहयोग कीजिए। आप प्रत्येक पुस्तकालय में पहुँचाने वाली हमारी इस योजना में सहयोग कर अपने राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं। आपका प्रयास हमारे इस महान योजना में सहायक होगा, हम आपके सहयोग की प्रतीक्षा कर रहे हैं —

ए १. 'विवेक-ज्योति' को विशेषकर भारत के स्कूल, कॉलेज, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों द्वारा युवकों में प्रचारित करने का लक्ष्य है।

ए २. एक पुस्तकालय हेतु मात्र १८००/- रुपये सहयोग करें, इस योजना में सहयोग-कर्ता के द्वारा सूचित किए गए सामुदायिक ग्रन्थालय, या अन्य पुस्तकालय में १० वर्षों तक 'विवेक-ज्योति' प्रेषित की जायेगी।

ए ३. यदि सहयोग-कर्ता पुस्तकालय का नाम चयन नहीं कर सकते हैं, तो हम उनकी ओर से पुस्तकालय का चयन कर देंगे। दाता का नाम पुस्तकालय के साथ 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जाएगा। यह योजना केवल भारतीय पुस्तकालयों के लिये है।

❖ आप अपनी सहयोग-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर या एट पार चेक 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम से बनवाकर पत्र के साथ निम्नलिखित पते पर भेज दें, जिसमें 'विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना' हेतु लिखा हो। आप अपनी सहयोग-राशि निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कर सकते हैं। आप इसकी सूचना ई-मेल, फोन और एस.एम.एस. द्वारा अपना नाम, पूरा पता, पिन कोड एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।

सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अकाउन्ट नम्बर : 1385116124, IFSC CODE : CBIN0280804

पता — व्यवस्थापक, विवेक-ज्योति कार्यालय, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,

रायपुर - 492001 (छत्तीसगढ़), दूरभाष - 09827197535, 0771-2225269, 4036959

ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com, वेबसाइट : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

'विवेक-ज्योति' पत्रिका स्वामी विवेकानन्द जी की जन्म-शताब्दी वर्ष के शुभ अवसर पर १९६३ ई. में आरम्भ की गई थी। तबसे यह पत्रिका निरन्तर आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक विचारों के प्रचार-प्रसार द्वारा समाज को सदाचार, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन यापन में सहायता करती चली आ रही है। यह पत्रिका सदा नियमित और सस्ती प्रकाशित होती रहे, इसके लिये विवेक-ज्योति के स्थायी कोष में उदारतापूर्वक दान देकर सहयोग करें। आप अपनी दान-राशि इलेक्ट्रॉनिक मनीआर्डर, एट पार चेक या सीधे बैंक के खाते में उपरोक्त निर्देशानुसार भेज सकते हैं। प्राप्त दान-राशि (न्यूनतम रु. १०००/-) सधन्यवाद सूचित की जाएगी और दानदाता का नाम भी पत्रिका में प्रकाशित होगा। रामकृष्ण मिशन को प्रदत्त सभी दान आयकर अधिनियम-१९६१, धारा-८०जी के अन्तर्गत आयकर मुक्त है।

सुदर्शन सौलार... ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रूप से उपलब्ध इस ऊर्जा का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर' !



सौलर वॉटर हीटर

24 घंटे गरम पानी के लिए

सौलर लाइटिंग

ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सौलर इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम

रुफटॉप सौलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, होटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स,
इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

रामङ्गादारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!



आजीवन
सेवा



लाखों संतुष्ट
ग्राहक

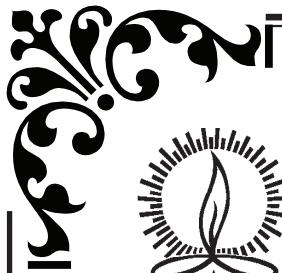


Sudarshan Saur®

SMS: SOLAR to 58888

Toll Free
1800 233 4545

www.sudarshansaur.com
E-mail: office@sudarshansaur.com



॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥



विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक



वर्ष ५९

अक्टूबर २०२१

अंक १०

अम्बास्तोत्रम् (स्वामी विवेकानन्दविरचितम्)

पुरखों की थाती

का त्वं शुभे शिवकरे सुखदुःखहस्ते

आधूर्णितं भवजलं प्रबलोर्मिभंगैः ।

शान्तिं विधातुमिह किं बहुथा विभग्नां

मातः प्रयत्नपरमासि सदैव विश्वे ॥ १ ॥

- घोर लहरों की भंगिमा में महावर्त - झंझावात के साथ इस भव-सागर में माँ तुम क्रीड़ा कर रही हो। हे शुभंकर! तुम शिवमयी मूर्ति-धारण कर सुख-दुख से सबको छल रही हो। इस व्यस्त, अशान्त संसार में शान्ति प्रदान करने के लिये तुम सदैव प्रयत्नशील हो।



सम्पादयन्त्यविरतं त्वविरामवृत्ता

या वै स्थिता कृतफलं त्वकृतस्य नेत्री ।

सा मे भवत्वनुदिनं वरदा भवानी

जानाम्यहं ध्रुवमियं धृतकर्मपाशा ॥ २ ॥

- जिसने कर्मबन्धन काट दिया है, उसे तुम सदा अपना दास बनाकर शान्ति-अमृत की धारा नित्य पिला रही हो। जो फलाकांक्षारहित है और वह फल तुम्हें समर्पित करना चाहता है, उसके लिये हे भवानि ! तु सदा व्याकुल रहती हो, किन्तु मुझे मत बाँधो, मेरी दुख-रात्रि का नाश करो।

अकृत्यं नैव कर्तव्यं प्राणत्यागेऽपि संस्थिते ।

न च कृत्यं परित्याज्यम् एष धर्मः सनातनः ॥ ७ ३ ७ ॥

प्राण जाने की सम्भावना हो, तो भी – अपने कर्तव्य को त्याग कर कोई अनुचित कर्म नहीं करना चाहिये – यही सनातन धर्म है।

अकृत्वा परसन्तापं अगत्वा खल-मन्दिरम् ।

अनुत्सृज्य सतां वर्त्म, यद्-अल्पमपि तद्-बहु ॥ ७ ३ ८ ॥

दूसरों को कष्ट दिये बिना, दुष्ट जनों के साथ सम्बन्ध बनाए बिना, भले लोगों का संसर्ग त्यागे बिना; थोड़े कम की भी प्राप्ति हो, तो भी वह पर्याप्त है।

अज्ञेभ्यो ग्रन्थिनः श्रेष्ठाः ग्रन्थिभ्यो धारिणो वराः ।

धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठाः ज्ञानिभ्यो व्यवसायिनः ॥ ७ ३ ९ ॥

निरक्षर लोगों की अपेक्षा ग्रन्थ पढ़नेवाले बेहतर हैं, ग्रन्थ-पाठकों की अपेक्षा उनके अर्थ को समझनेवाले बेहतर हैं, समझनेवालों की अपेक्षा ज्ञानी लोग बेहतर हैं और ज्ञानियों की अपेक्षा उसका सदुपयोग करनेवाले बेहतर हैं।

मातृ-चरण सम सुख नहीं दूजा

जा मेरे चंचल मन श्यामा के चरण में

हे मेरे मन ! तू मुझे भटकाओं नहीं। मैं तुझे जानता हूँ, तूने जीवन भर भटकाने का ही काम किया है। अब सावधान हो जाओ। मेरे माँ के किसलय चरणों की नख-द्युति मेरे हृदय में विराजने लगी है और तुम मुझे उनके ऐश्वर्य पर भटकाकर भ्रमित कर रहे हो। यह ठीक नहीं है। कम-से-कम अब तो कृतज्ञ बनो और मेरी माँ के चरणों में जाकर पढ़े रहो। मेरी माँ के चरण ऐसे-वैसे नहीं हैं। ऐसे ही नहीं शिव उनके चरण-तल में पढ़े रहते हैं। महाराजा रामकृष्ण ने ऐसे नहीं कहा कि –

**अनन्तरूपिणी काली कालीर अन्त केबा पाय।
किंचित् माहात्म्य जेने, शिव पड़ेछेन राँगा पाय। ॥१॥**

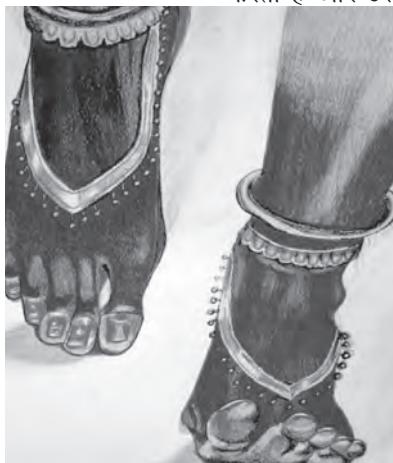
– अनन्तरूपिणी काली का अन्त कौन पा सकता है? कुछ माहात्म्य जानकर ही तो शिवजी माँ के रक्त पादपद्मों में पढ़े हुए हैं। ऐसे ही नहीं सुर-नर-मुनि उनके चरणों की वन्दना करते हैं! इन चरणों की महिमा बड़ी महान और विलक्ष है!

माँ के ये वही चरण हैं, जो भगवान शिव के वक्ष पर सुशोभित हैं। कहा जाता है कि शक्ति बिना शिव शव हो जाते हैं। यहाँ भगवान शिव ने सहर्ष माँ के चरणों को अपने हृदय में धारण किया है। माँ के श्रीचरणों की इस महिमा का बोध करते हुए स्वामी विवेकानन्द जी ‘अम्बास्तोत्रम्’ में लिखते हैं –

**चिन्त्यं श्रिया सुचरणं त्वभयप्रतिष्ठं
सेवापरैरभिनुतं शरणं प्रपद्ये ॥**

– हे माँ ! जिन अभयप्रद चरणों की सेवा स्वयं रमा करती हैं, उन्हीं चरणों की मैं शरण लेता हूँ।

देवी के चरणों की महिमा को समझकर ही तो अद्वैत वेदान्ती शंकराचार्यजी भी ‘देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्’ में माँ से अपनी दीनता और असमर्थताजनित दुख प्रकट करते हुए कहते हैं –



जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता

न वा दत्तं देवि इविणमपि भूयस्तव मया ।

तथापि त्वं स्नेहं मयि निरूपम् यत्प्रकुरुषे

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥ १ ॥

– हे जगत् माता ! मैंने तेरे चरणों की सेवा नहीं की, नहीं तुम्हे धनादि अर्पित किया। तथापि तुम सदा इस पुत्र पर अपना सतत स्नेह-वर्षण कर मेरी रक्षा करती रही। माँ इससे यह सिद्ध हो गया कि पुत्र कुपुत्र हो सकता है, लेकिन माता कभी कुमाता नहीं होती।

माँ के ये वही चरण हैं, जो महिषासुर का वध करने के लिये सिंह पर सवार होकर द्रुत गति से रणभूमि में प्रस्थान करती हैं और उसका वध कर उसे अपने धाम में भेजती हैं।

अपने भक्तों की रक्षा के लिये माँ कभी सौम्य, तो कभी उग्र रूप धारण करती हैं। देवासुर संग्राम में माँ देवों की रक्षा हेतु काली रूप भी धारण करती हैं और राक्षस-निकर का विनाश करती हैं।

‘श्रीमहिषासुरमर्दिनीस्तोत्रम्’ में भक्त माँ से प्रार्थना करता है – हे माता ! तेरे चरणों की कृपा से परम पद की प्राप्ति होती है ...। हे माँ ! अब ऐसी कृपा करो कि मैं तेरे चरणों में ही शरणागत होऊँ, इत्यादि।

पदकमलं करुणानिलये वरिवस्यति योऽनुदिनं सुशिवे ।

अथि कमले कमलानिलये कमलानिलयः स कथं न भवेत् ॥

तव पदमेव परमपदमित्युशीलयतो मम किं न शिवे ।

जय जय हे महिषासुरमर्दिनी रम्यकपर्दिनी शैलसुते । १७ ॥

तव चरणं शरणं करवाणि मृडानि सदा मयि देहि शिवं

जय जय हे महिषासुरमर्दिनी रम्यकपर्दिनी शैलसुते । १८ ॥

स्वामी ब्रह्मानन्द जी आकुल प्रार्थना करते हुए कहते हैं, दुर्गतिनाशिनी शुभ्म का वध करनेवाली माँ दुर्गा महारानी ! मैं तुम्हारे चरण में आया हूँ, मेरे संसार-भय का नाश कर दो – जय दुर्गे दुर्गति परिहारिणी शुभ्मविदारिणी मात भवानी !... ब्रह्मानन्द चरण में आये भवभय नाश करो महरानी ।

एक अद्भुत घटना है। तुलसीदासजी भावराज्य में एक दिन माँ सीताजी से प्रार्थना करते हैं – “माँ जब प्रभु श्रीराम शान्त एकान्त हों, तब बस इतनी-सी हमारी एक बात कुछ करुण प्रसंग चलाकर कह दीजियेगा –

कबहुँक अम्ब अवसर पाई।

मेरिऔं सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाई॥ । । ...

सुनत राम कृपालु के मेरी बिगरिऔं बनि जाइ॥ । ।

तुलसी बाबा भी अपनी बात दुर्गास्वरूपिणी जगजननी सीताजी से कहलवा रहे हैं। यहाँ तक कि भगवान् श्रीराम के चरणों में प्रेम हो, उन्होंने यह वरदान भी माँ से ही माँगा था –

रघुपति-पद परम प्रेम ‘तुलसी’ यह अचल नेम।

देहु है प्रसन्न पाहि प्रणत पालिका॥ ।

ऐसी महिमा है मेरी माँ के चरणों की कि बड़े यति-योगी, वैरागी जब अपनी साधना से उन्हें नहीं पाते, तब उनकी चरणों की याचना करते हैं। जैसे भक्त फटिकचन्द्र गंगोपाध्याय ने कहा – माँ योगी, ऋषि ध्यान कर-करके आज तक तेरी लीला को नहीं जान पाये। इसलिये हे अभया ! मेरे हृदय में अपने अभय चरणों को रखना –

जोगी ऋषि तोमार लीला पाय ना आजो ध्यानेर माझे।

अभयार तोर चरण छाया राखिस आमार हृदय माझे॥ । ।

माँ की इन्हीं चरणों की महिमा का किंचित् बोध करते हुए एक भक्त ने बड़े आर्तभाव से याचना की –

माँ ! मेरी तुम्हारे अतिरिक्त और कोई गति नहीं है। तू ही मेरे जीवन की आधार है। तू ही मेरी दशा और दिशा है। तू ही मेरा साध्य और साधना भी है। माँ मेरे पास कोई साधना-शक्ति नहीं है, न कोई भावना-भक्ति है। लेकिन मुझे इतना विश्वास है कि तू मेरी माँ है और मुझे कभी भी दीन-हीन अवस्था में नहीं छोड़ेगी। मुझमें कोटि त्रुटियाँ हैं, फिर भी सुत-स्नेहवत्सला होने के कारण तू मेरा सही मार्ग-दर्शन करेगी और सदा मेरे साथ रहकर मेरी रक्षा करेगी। माँ मैं तेरे सौम्य और भयंकर दोनों रूपों की उपासना नहीं करता। मैं तो तेरे उन कोमल किसलय वर्ण चरणों की ओर टकटकी लगाकर देखता रहता हूँ कि कब वे चरण मुझे अपने अंक में लेने के लिये मेरी ओर आ रहे हैं। मैं उन चरणों की बाट देखते रहता हूँ कि कब वे चरण मेरे हृदय में आकर विराजमान हों और मेरे हृदय में बसे कामादि दस्युओं का विनाश करें। माँ ! इन दस्युओं ने मेरा सर्वस्व लूटकर मुझे कंगाल बना दिया है और तुझसे पृथक करने के लिये सदा

मुझे डराते-धमकाते रहते हैं। माँ ! इस संसार में मैंने कई ऐश्वर्यशाली देव-देवियों से प्रार्थना की, किन्तु कोई मेरी सहायता करने में सक्षम नहीं रहा। अब चारों ओर से हारकर मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ। मैं तेरे चरणों में शरणागत हूँ। मेरी रक्षा करो ! मेरी रक्षा करो माँ !

श्यामापदाभिली भक्त कमलाकान्त अपने मन से कहते हैं – मजलो आमार मन भ्रमरा श्यामापद नीलकमले॥ । ।

– हे मन ! तू श्यामा, काली के पद-कमल में लीन हो जाओ।



प्रसिद्ध काली भक्त रामप्रसाद ने वासनाओं से मुक्त होने का मूल मन्त्र देते हुए कहा अरी रसने ! यदि तू वासनाओं से मुक्ति होना चाहती है, तो काली-काली जपो और काली के चरणों का ध्यान करो –

काली काली बोलो रसना।

करो पद ध्यान नामामृत पान, यदि हते त्राण थाके बासना॥ । ।

अन्त में रघुनाथ राय के उस परामर्श-भजन की हमें याद आती है। वे अपने मन से कहते हैं – हे मन ! अभया के अभय पद को अपने जीवन का सर्वस्व बनाओ, उस आदिभूता सनातनी देवी के चरणों का ध्यान करो, तुम्हारे सभी भव-भय दूर हो जाएँगे –

अभयार अभय पद करो मन सार।

भवभय सब दूरे जाबे रे तोमार॥ ।

आदिभूता सनातनि चरण करो रे ध्यान ...॥ । ।

सन्दर्भ सूत्र – १. स्तव भजनांजलि, पृष्ठ ६६, २. वही, ४७, ३. विनयपत्रिका पद-४१, ४. स्तव भजनांजलि, पृष्ठ ५१, ५. वही, पृ. ६२, ६. वही, पृ. ५१, ७. वही, पृ. ५९.



श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और अन्तरंग पार्षदों द्वारा दुर्गापूजा

स्वामी तत्त्विष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर

(गतांक से आगे)

श्रीमाँ सारदादेवी और दुर्गापूजा

दुर्गापूजा करना निश्चित करने के बाद स्वामीजी ने सर्वप्रथम श्रीमाँ सारदा देवी से अनुमति ली थी और श्रीमाँ ने भी आनन्द से दुर्गापूजा की अनुमति प्रदान की थी। इतना ही नहीं, वे स्वयं अपने संगियों के साथ षष्ठी के दिन बेलूड़ मठ पधारीं और मठ के दक्षिण में निकटस्थ नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में (१८ से २२ अक्टूबर, १९०१) निवास कीं। श्रीमाँ ने माँ दुर्गा के बोधन और अगले तीनों दिन दुर्गापूजा में भाग लिया। संन्यासी कर्मकाण्ड की पूजा नहीं कर सकते, इसलिए स्वामीजी ने श्रीमाँ के नाम से पूजा करने का निर्णय

लिया। पूजा का संकल्प उनके ही नाम से हुआ और यह परम्परा आज भी चल रही है। कुमारी पूजा के समय श्रीमाँ वहाँ उपस्थित थीं और उन्होंने उस दिन रामलाल दादा की ज्येष्ठ कृष्णमयी तथा और कुछ सधवा महिलाओं की 'एयोरानीपूजा' (सुहागन-पूजा - सुहागिनी महिला के चरणों को धोकर, उनमें आलता लगाना, केश-शृंगार करना, उनके दोनों हाथों में चूड़ियाँ पहनवाना, बायें हाथ में लोहे की चूड़ी पहनवाना, उनको सिन्दूर लगाना, नैवेद्य-पान-सुपारी-प्रणामी देना) भी की थी। श्रीमाँ की संगिनियों ने भी यह पूजा की थी। प्रतिमा में जिन दुर्गा की पूजा हो रही है, वे मानवी होकर सारदादेवी के रूप में (जीवित-दुर्गादेवी) मण्डप में बैठी पूजा

देख रखी हैं। स्वामी विवेकानन्द साक्षात् ऐसा ही देख रहे थे। श्रीमाँ के आदेशानुसार दुर्गापूजा में बलि नहीं दी गयी थी। पर कालीपूजा में बलि दी गयी थी, ऐसा स्वामीजी १२ नवम्बर, १९०१ को भगिनी ख्रिस्टन को पत्र में लिखते हैं।

स्वामीजी श्रीमाँ को केवल गुरु-पत्नी के रूप में ही नहीं देखते थे, पर वे नारी-जाति के उद्धार के लिए अवतरित मातृशक्ति के रूप में देखते थे। सन् १८९४ में स्वामी शिवानन्द को लिखित पत्र में माँ के दिव्यत्व के बारे में वे कहते हैं, 'माँ सारदा देवी क्या हैं, यह तुम अभी तक समझ नहीं सके। ... यदि जीवन्त दुर्गा की पूजा कर नहीं दिखायी, तो मेरा नाम नहीं। जिस दिन तुम जमीन खरीदकर जीवन्त दुर्गा-माँ को वहाँ बैठा दोगे, उस दिन मैं चैन की साँस लूँगा।' माँ के रूप में जीवन्त दुर्गा को देखकर स्वामीजी तथा अन्य गुरु-भाइयों को अत्यन्त आनन्द हुआ था। स्वामीजी की यह इच्छा १९०१ ई. में पूरी हुई थी।

दशमी के दिन (२२ अक्टूबर, १९०१) सायंकाल के बाद देवी प्रतिमा का गंगाजी में विसर्जन किया गया। विसर्जन के पूर्व देवी को नौका-भ्रमण के लिए बाहर निकाला गया। बैण्ड-खोल-करताल आदि विविध बाजे बजने लगे; अस्वस्थ स्वामीजी ने मठ-भवन के बारामदे से देखा, राजा महाराज एक वृन्दावनी चादर की गाँती बाँधकर प्रतिमा के समुख बालक की तरह मधुर नृत्य कर रहे हैं। इस आनन्दमय दृश्य से सभी का मन मुग्ध हो गया।

दूसरे दिन (२३ अक्टूबर, १९०१) श्रीमाँ स्वामीजी आदि संन्यासियों को आशीर्वाद देकर बागबाजार में अपने निवास स्थान पर चली गयीं।

बहुत वर्षों बाद १ अगस्त, १९१८ को श्रीमाँ ने स्वयं इस बेलूड मठ की पहली दुर्गापूजा के बारे में कहा था, "अहा ! जिस बार नरेन ने मुझे मठ में ले जाकर पहली बार पूजा (दुर्गापूजा) करायी, उस बार पुजारी (तन्त्रधारक) को उसने मेरे हाथ से दक्षिणा के रूप में पचीस रुपये दिलाये थे। कुल चौदह सौ रुपये खर्च किये थे। पूजा के दिन पूरा मठ लोगों से भर गया था। सभी बच्चे परिश्रम कर रहे थे। नरेन ने आकर कहा, 'माँ, मुझे बुखार ला दो !' हे भगवान !



कहते-न-कहते उसे कँपकँपी के साथ ज्वर हो गया। मैंने कहा, 'ओ माँ, यह क्या हुआ, अब क्या होगा?' नरेन बोला, 'माँ, चिन्ता की कोई बात नहीं। मैंने अपनी इच्छा से ज्वर इसलिए ले लिया कि लड़के प्राणपण से परिश्रम कर रहे हैं, तो भी कहीं कोई त्रुटि हो जाय और मैं उन पर नाराज होकर डॉटने लाँगू या कहीं दो थप्पड़ ही लगा बैठूँ। इससे उन्हें भी कष्ट होगा और मुझे भी दुख होगा। इसीलिए सोचा कि आवश्यकता ही क्या है ! थोड़ी देर बुखार में ही

पड़ा रहूँ।' बाद में कामकाज पूरा होते ही मैंने कहा, 'ओ नरेन, तो अब उठ जा।' नरेन बोला, 'हाँ माँ, यह देखो उठ गया।' यह कहकर वह पहले जैसा ही स्वस्थ होकर उठ बैठा !

"पूजा के समय वह अपनी माँ को भी मठ में ले आया था। वह बैगन तोड़ रही थी, मिर्च तोड़ रही थी और इस बगीचे, उस बगीचे घूमती फिर रही थी। मन में थोड़ा अहंकार था कि मेरे नरेन ने यह सब किया है। नरेन ने तब आकर उससे कहा, 'अजी, तुम कर क्या रही हो? माँ के पास जाकर बैठो न - बैगन, मिर्च तोड़ती फिर रही हो। शायद सोच रही हो कि तुम्हारे नरू ने यह सब किया है। परन्तु ऐसी बात नहीं है, जिन्हें करना था, उन्होंने ही किया है। नरेन कुछ भी नहीं है।' अर्थात् ठाकुर ने ही सब किया है। अहा ! मेरा बाबूराम नहीं है, कौन इस बार पूजा करेगा?"

दुर्गापूजा के पश्चात् मठ में यथारीति लक्ष्मीपूजा तथा कालीपूजा भी हुई थी। इस पूजा के कुछ महीनों के उपरान्त ही स्वामीजी ने देहत्याग दिया था। स्वामीजी के बाद भी पूजा यथारीति प्रत्येक वर्ष बेलूड मठ में होती रही, परन्तु कभी प्रतिमा में, तो कभी कुछ अनिवार्य कारण से घट में। स्वामीजी के बाद स्वामी प्रेमानन्द बेलूड मठ में दुर्गापूजा कराते थे।

सन् १९०१ के बाद दीर्घ काल तक मठ में दुर्गापूजा प्रतिमा में अनुष्ठित नहीं हुई। सन् १९१२ से प्रायः नियमित रूप में प्रतिवर्ष प्रतिमा में पूजा अनुष्ठित हो रही है।

माँ ने सन् १९१२, १९१६ तथा अन्य सालों में बेलूड मठ में दुर्गापूजा में भाग लिया था। हर बार वे वहाँ रहा करतीं और साधु तथा गृही भक्तों को आशीर्वाद प्रदान करती थीं।

सन् १९०६ बेलूड़ मठ : इस साल दुर्गापूजा घट-पट में मनाई गयी। स्वामी शिवानन्द पुजारी और स्वामी रामकृष्णानन्द तन्त्रधारक थे। अष्टमी और नवमी के सन्धिकाल के शुभ समय (सन्धि-पूजा) लौकी काटकर प्रतीकात्मक बलि दी गयी। अपने सामने घड़ी रखकर रामकृष्णानन्द ने बलि



बेलूड़ मठ

देनेवाले को कहा था, 'समय होने पर मैं 'महामाई' की जय' कहूँगा, तब तुम बलि देना।' समय होने पर रामकृष्णानन्द ने बड़े जोर से माता की जय-जयकार लगाई थी।

सन् १९०७ में गिरीशचन्द्र घोष अपने घर शारदीय दुर्गापूजा करना चाहते थे। वे और उनकी बहन दक्षिणा श्रीमाँ इस उत्सव के लिए पधारें, ऐसी स्वामी सारदानन्द से विनती करने लगे। माँ तब जयरामवाटी में अस्वस्थ थीं। गिरीश की विनती सुन कृपामयी माँ कोलकाता पथारीं। कोलकाता में तब दंगा चल रहा था। साथ में राधू और उसकी माँ भी आई और वे गिरीश के घर के समीप ही बलराम बाबू के घर में ठहरे। दूसरे दिन गिरीश और उनकी बहन माँ को प्रणाम करने और निमन्त्रण देने आए। दीदी ने कहा, 'गिरीश तो हठ किए बैठा था, माँ। कहता था - माँ के आए बिना पूजा कैसे करूँगा? करूँगा ही नहीं।'

गिरीशचन्द्र की दुर्गापूजा धूमधाम से आरम्भ हुई। श्रीमाँ दुर्गापूजा में आरम्भ से अन्त तक विद्यमान रहीं। माँ के समक्ष कल्पारम्भ हुआ। गिरीश आनन्द से परिपूर्ण थे। महासप्तमी के दिन सुबह से ही बलराम बाबू के घर पर भक्तों का आगमन होने लगा। दल के दल लोग आते। बहुत-से भक्त भी माँ के दर्शन लिए आए और माँ ने उनकी मनोकामना पूरी की। गिरीश के यहाँ जाने पर वहाँ भी भक्तों की पूजा ग्रहण करने से माँ को विश्राम ही नहीं मिला।

महाष्टमी के दिन भी खूब सबेरे ही श्रीमाँ के पास भक्तों का ताँता लग गया। गिरीश भवन में भी वैसा ही हुआ। माँ का स्वास्थ ठीक नहीं था। फिर भी वे भक्तों की पूजा ग्रहण करती रहीं। दिनभर के श्रम के कारण उन्हें बुखार हो गया। वे लेट गयीं। एक तो जीर्ण शरीर और उस पर इतना श्रम। माँ को विश्राम मिले, इसलिए सन्धिपूजा के समय माँ नहीं आयेंगी, ऐसा निर्णय लिया गया। यह सुनकर गिरीश नाराज होकर अपने कमरे में बैठे रहे। सन्धिपूजा उस वर्ष रात के १२ बजे थी। शरीर चल नहीं रहा था, तो भी वे मानो उसे बलपूर्वक चला रही थीं। माँ पतली चादर लपेट कर पैदल ही गिरीश के घर जा पहुँची और बोल उठीं, 'मैं आई हूँ।' यह सुन गिरीश तत्काल पण्डाल में भावविभोर हो पहुँचे और माँ को प्रणाम किया और कहने लगे, 'माँ, मैं सोच ही रहा था की मेरी दुर्गापूजा व्यर्थ हो जायेगी और तभी आपकी आवाज सुनाई दी।' इस दौरान गिरीश के मित्र, परिवार तथा नाट्य-परिवार के सदस्यों ने आकर श्रीमाँ से आशीर्वाद लिया।

शायद इसी वर्ष (१९०७) मद्रास मठ में नवरात्रि मनाई गई। स्वामी रामकृष्णानन्द महाराज ने स्वयं प्रचलित पद्धति से पूजा की। पूजा का समापन नवमी के दिन होम-हवन से हुआ। यह सब श्रीरामकृष्ण के चित्र के सामने किया गया।

सन् १९१२ में दुर्गापूजा के समय श्रीमाँ सारदादेवी बेलूड़ मठ में उपस्थित थीं। स्वामी प्रेमानन्द माँ की अनुमति और आशीर्वाद ले देवीपूजा के आयोजन में जी-जान से लग गये। उनकी विशेष प्रार्थना से माँ पूजा के समय कुछ दिन मठ के पास ही रहने को सम्मत हो गयीं। आनन्दमयी का आगमन होनेवाला था। साधु-भक्तों के हृदय में आनन्द के स्वर बज उठे।

१६ अक्टूबर, १९१२ ई. को बोधन के दिन अपराह्न में माँ के बेलूड़ मठ आने की बात थी। इधर शाम होने लगी, पर माँ का शुभागमन न हुआ, इससे स्वामी प्रेमानन्द घबड़ाकर इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। मठ के प्रवेशद्वार पर अब तक मंगलघट और केले के खम्भे नहीं रखे गए हैं, यह देखकर व्यग्र हो उठे। देवी का बोधन समाप्त होते ही माँ की घोड़ागाड़ी मठ के फाटक पर आ पहुँची। तेजी से स्वामी प्रेमानन्द आदि साधु-भक्तवृन्द गाड़ी के सामने गये तथा घोड़ों को निकालकर खुद ही गाड़ी खींच मठ के आँगन में ले आए। 'श्रीगुरुमहाराज जी की जय, श्रीदुर्गा माई की

जय' की जयकार करते हुए गाड़ी खींचते-खींचते प्रेमानन्द खुशी से झूमने लगे, मानो मुख और नेत्रों से आह्लाद फूटकर निकल रहा हो। जब गाड़ी आँगन में पहुँची, तब गोलाप-माँ ने माँ का हाथ पकड़कर बड़ी सावधानी से नीचे उतारा। उतरकर सब कुछ देख मुस्कुराती हुई माँ बोलीं, 'सब कुछ फिट-फाट है। हम लोग सज-धजकर जैसे माँ दुर्गा बनकर आये हैं।' इस बार श्रीमाँ बेलूङ मठ में छह दिन षष्ठी से एकादशी तक थीं। माँ तब बेलूङ मठ में सोनार बागान (लेगेट हाऊस) में वास कर रही थीं। उनके साथ योगीन-माँ, गोलाप-माँ, लक्ष्मी दीदी तथा भानु बुआ भी थीं।

अष्टमी के दिन तीन सौ से अधिक भक्तों ने 'जीवन्त दुर्गा' श्रीमाँ को प्रणाम किया, उनके दर्शन किये। उसी दिन तीन-चार भाग्यवानों ने माँ से मन्त्र-दीक्षा प्राप्त की। माँ के आशीर्वाद से नवमी का दिन भी सार्थक हुआ। महानवमी के दिन दोपहर के बाद गोलाप-माँ ने स्वामी सारदानन्द, प्रेमानन्द आदि के पास जाकर माँ का आशीर्वाद सुनाया। कहा, 'शरत, माँ तुम लोगों की सेवा से बहुत प्रसन्न हैं और वे सबको आशीर्वाद दे रही हैं।' यह सुन हर्षित होकर सारदानन्द ने प्रेमानन्द का आलिंगन किया और कहा, 'बाबूरामदा सुना क्या?'

अष्टमी की रात भक्त गिरिशचन्द्र घोष का 'जना' तथा विजया दशमी के रात अहिभूषण भट्टाचार्य का 'राम अश्वमेध यज्ञ' ये संगीतमय नाटक प्रस्तुत हुए थे, माँ मठ की दूसरी मंजिल पर बैठकर बड़े आनन्द से यह नाटक देख रही थीं। दशमी को प्रतिमा-विसर्जन के समय गंगा में एक नौका पर सवार होकर भक्त डॉ. कांजिलाल देवी के सामने अपनी विभिन्न मुख-भंगिमा से सबको हँसा रहे थे। यह देख एक ब्रह्मचारी बहुत क्रोधित हुए थे। माँ अपने कमरे से ये सब देख खुश हो रही थीं। माँ ने कहा, 'यह सब ठीक ही है। गाना-बजाना, हास्य-विनोद आदि के द्वारा देवी को सब प्रकार से आनन्दित करना चाहिए।'

एक सप्ताह तक बेलूङ में रहकर मठ-वासियों को आशीर्वाद दे माँ २२ अक्टूबर, १९१२ को उद्घोधन लौट आई। पूजा के दिनों में सभी माँ की ओर टकटकी लगाकर देखा करते, उन्हें प्रसन्न देख जान लेते की देवी ने पूजा स्वीकार कर ली है।

सन् १९१४ : १९१४ ई. की दुर्गापूजा आयी।

वर्धमान, मेदिनीपुर जिलों में बाढ़, अन्नकष्ट इत्यादि का समाचार राजा महाराज के पास पहुँचा। आर्तों की सेवा करने के लिए सहायता लेकर सेवकगण दौड़ पड़े। इधर महाराज के आदेश से दुर्गापूजा स्थगित कर कालीपूजा भक्तिपूर्वक अनुष्ठित हुई।

सन् १९१६ की बात है। श्रीमाँ का आशीर्वाद लेकर स्वामी प्रेमानन्द बेलूङ मठ में भगवती की प्रतिमा की आराधना के आयोजन में लग गये। श्रीमाँ पूजा के समय मठ में आयेंगी, यह आश्वासन पाकर संन्यासियों के हृदयों में आनन्द-धारा उमड़ने लगी। माँ जो आयेंगी! 'शरणागत-दीनार्त-परित्राण' प्रदायिनी माँ आयेंगी, सारे दुःख-दैन्य हरण कर आनन्दमयी-रूप से आयेंगी। श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था - मन्दिर में जो माँ है और नौबतखाने में जो माँ है, दोनों एक ही माँ हैं। वे ही अम्बा मठ में अम्बालिका-रूप से पूजित होंगी। श्रीमाँ की शुभेच्छा और उपस्थिति से ही संन्यासीगण सोचने लगते थे कि देवी-पूजा सार्थक हुई। संन्यासियों की पूजा तो निष्काम-पूजा है - 'अकामो विष्णुकामो वा', उनकी बस यही प्रार्थना और याचना रहती है कि क्षेमंकरी माँ प्रसन्न हो जायें। मठ के साधुगण जीवन्त देवी के श्रीपादपद्मों के दर्शन और श्रीचरणों में भक्ति-अर्घ्य निवेदन करना ही अपना परम-कर्तव्य मानते थे। अस्तु।

श्रीमाँ ने सप्तमी के दिन (३ अक्टूबर, १९१६) मठ में पदार्पण किया। मठ के उत्तर ओर के उद्यान-भवन (लेगेट हाऊस - सोनार बागान) में उनके रहने की व्यवस्था की गयी थी। श्रीमाँ यथासमय पूजा-मण्डप में आयीं और पूजा आदि देखकर आनन्दित हुई। उन्होंने सब को दर्शन भी दिये।

इधर राधू के अकस्मात् अस्वस्थ हो जाने से माँ के कोलकाता लौट जाने की बात चलने लगी। यह सुनकर एक संन्यासी स्वामी धीरानन्द ने स्वामी प्रेमानन्द के पास जाकर परामर्श दिया कि वे श्रीमाँ से रह जाने के लिए प्रार्थना करें।



स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज

इस पर प्रेमानन्दजी ने कहा, “अरे भाई, महामाया को कौन रोक सकता है? उनकी जैसी इच्छा होगी, वैसा ही होगा, उनकी इच्छा के विरुद्ध कौन क्या कर सकता है?” अन्त में श्रीमाँ ने कोलकाता लौट जाने का विचार त्याग दिया।

उस वर्ष पूजा के तीनों ही दिन प्रकृति का वातावरण अनुकूल नहीं था। परन्तु श्रीमाँ की उपस्थिति से किस प्रकार सब कुछ आनन्द से सम्पन्न हुआ, इसका स्पष्ट आभास स्वामी शिवानन्द जी के पत्र से मिलता है। वे लिखते हैं, “मैंने इसके पहले महामाया की प्रतिमा में पूजा कभी भी नहीं देखी थी। किन्तु दुर्गापूजा के समय श्रीमाँ की उपस्थिति के कारण पूजा बहुत ही अच्छी तरह से मानो पूजा प्रत्यक्ष रूप में सम्पन्न हुई। ... तीनों दिन लगातार जोरों की वर्षा हो रही थी। पर आश्रय की बात है कि माँ की कृपा से प्रसाद पाने के समय वह रुक भी जाती थी। यह देख सब भक्तगण आश्रयचकित हो गये थे। बाद में योगीन-माँ से सुना था कि जब भी भक्तगण प्रसाद ग्रहण करने के लिए बैठते तब श्रीमाँ उस समय दुर्गानाम का जप करतीं और प्रार्थना करतीं ‘जगन्माता रक्षा करो, भक्त इतनी वर्षा में कैसे प्रसाद ग्रहण करेंगे?’ पतल आदि सब बह जायेगा !’ श्रीमाँ की प्रार्थना महामाया सुनती थीं और उस समय वर्षा रुक जाती थी। तीनों दिन ऐसा हुआ। तीन दिनों में दोनों समय लगभग चार हजार लोगों ने प्रसाद पाया था। दशमी को श्रीमाँ अपनी संगिनियों के साथ वहाँ पधारकर (वर्णादि) पूजा की थीं।...”

पूजा के इन कुछ दिनों में बहुत से लोगों ने श्रीमाँ की चरण-पूजा की। दर्शनिर्थियों की भीड़ भी खूब रहती थी। इधर दर्शन के बीच-बीच में श्रीमाँ को बारबार गंगा-जल से अपना पैर धोती हुई देख योगेन-माँ ने पूछा, “माँ, वह क्या कर रही हो? सर्दी लग जायेगी।”

श्रीमाँ ने कातर-कण्ठ से कहा, “योगेन, क्या बताऊँ! कुछ लोग रहते हैं, जिनके प्रणाम करने से तो शरीर ठण्डा होता है और किसी-किसी के प्रणाम करने से तो देह में

मानो आग लग जाती है। गंगा-जल से धोये बिना रह नहीं सकती।”

अष्टमी के दिन सुबह आठ-नौ बजे श्रीमाँ दुर्गा प्रतिमा का दर्शन करने आई और रसोई घर देखने भी गयीं। साधु-ब्रह्मचारियों को सब्जी काटते देख श्रीमाँ ने कहा था, ‘लड़के तो सब्जी अच्छी काट रहे हैं।’ काम में लगे स्वामी जगदानन्द विनम्र भाव से कह उठे, ‘मुख्य उद्देश्य तो ब्रह्मयी (याने श्रीमाँ) को प्रसन्न करना ही है, चाहे वह साधन-भजन करके हो या सब्जी काटकर हो।’ यह सुनकर श्रीमाँ प्रसन्न हुई और उन्होंने सबको आशीर्वाद प्रदान किया।

अष्टमी के दिन सन्धिपूजा के बाद स्वामी सारदानन्द जी ने एक ब्रह्मचारी को कहा, ‘यह गिनी माँ को देकर प्रणाम निवेदित कर आओ।’ ब्रह्मचारी को लगा कि वह दुर्गा की प्रतिमा को अर्पित करना है। उसकी वह द्विधा-मनःस्थिति देख सारदानन्दजी ने उसका संशय दूर करते हुए कहा, ‘माँ उस उद्यानभवन में रह रही हैं। तुम वहाँ जाकर उनके चरणों में अर्पित कर प्रणाम कर आओ। यहाँ तो उनकी ही पूजा हो रही है।’

बेलूड़ मठ में संन्यासियों की देवी-आराधना सार्थक हुई। श्रीमाँ ने सब को आशीर्वाद दिया। उनके आशीर्वाद से सबको शान्ति और आनन्द मिला। श्रीमाँ का आशीर्वाद ही तो वास्तव में शान्ति-वारि है। पूजा के बाद श्रीमाँ कोलकाता लौट आयों।

सन् १९१६ की जो दुर्गापूजा हुई थी, उसके पुजारी श्रीमाँ के शिष्य ब्रह्मचारी हरिपद (बाद में स्वामी प्रणावनन्द) थे। उन्होंने लिखा है, ‘सप्तमी दिन श्रीमाँ की गाड़ी मठ में आयी। उनके साथ योगीन-माँ, गोपाल-माँ, सुधीरा आदि थे। मुख्य द्वार और पण्डाल फूल-पत्तों से सुशोभित किये गये थे। ढोल-ताशे की आवाज, शंखनाद तथा ‘श्रीदुर्गामाई की जय’ के जय-जयकार में स्वामी प्रेमानन्द ने श्रीमाँ का स्वागत किया। मन्दिर के पास आते ही स्वामी आत्मानन्द ने श्रीमाँ की पंचारती की तथा स्वामी प्रेमानन्द पंखा झल रहे थे। श्रीमाँ उपरी मंजिल पर स्थित मन्दिर गयीं, थोड़ी देर के

बाद नीचे उतरकर पण्डाल में अपनी जगह पर जाकर बैठ गयीं। मैंने उनके चरणों में तीन बार पुष्टांजलि अर्पण की। उन्होंने मेरे मस्तक पर हाथ रख कर मुझे आशीर्वाद दिया। सप्तमी पूजा शेष होने पर माँ ने मुझे उनके और उनकी संगिनियों के लिए पुष्टांजलि मन्त्र उच्चारण करने के लिए कहा। मुझे पक्का याद है कि उन्होंने चण्डी के इस श्लोक का अपने मधुर स्वर में उच्चारण किया था -

ॐ जयन्ती मंगला काली भद्रकाली कपालिनी ।

दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ॥

‘जयन्ती, मंगला, काली, भद्रकाली, कपालिनी, दुर्गा, शिवा, धात्री, स्वाहा और स्वधा, इन नामों से प्रसिद्ध जगदम्बिके ! आपको नमस्कार है।’

अन्य समय एक बार : ऐसे ही एक बार की दुर्गापूजा में श्रीमाँ बेलूड़ मठ पधारीं और नीलाम्बर बाबू के उद्यान भवन में वास कर रही थीं। महाष्ठमी के दिन भक्तगण श्रीमाँ को प्रणाम करने गये। माँ एक लकड़ी के स्टूल पर बैठी थीं और गोलाप-माँ उनके पास खड़ी रहकर उन्हें पंखा झल रही थीं। भक्तों की लम्बी कतार थी। भक्त एक दरवाजे से अन्दर आकर प्रणाम के बाद दूसरे दरवाजे से बाहर जा रहे थे। स्वामी सारदानन्द प्रवेश द्वार के पास बैठे थे। एक भक्त माँ के चरणों में पुष्ट अर्पित कर स्तोत्रपाठ करने लगा। देरी होते देख गोलाप-माँ ने उससे कहा, ‘सुनो, यह सब बन्द करो। देखो, कितने लोग कतार में खड़े हैं और इतनी भीड़ में माँ को गर्मी से कष्ट हो रहा है। ऐसे में इतना समय लेना कैसे चलेगा !’ स्वामी सारदानन्द ने यह सुनकर गोलाप-माँ से कहा, ‘गोलाप-माँ, उनकी बहुत-सी इच्छाएँ हैं। आप क्या उन्हें अपनी इच्छाओं की सूची भी बताने नहीं देंगी ? माँ मुझे रूप दे दो, जय दो, भार्या दो आदि ! कृपा करके शीघ्रता न करों।’ यह सुनकर सभी भक्त हँसने लगे और माँ भी मुस्कराने लगीं। यह देख वह भक्त वहाँ से तुरन्त चला गया।

श्रीरामकृष्ण के शिष्य श्रीमाँ को केवल गुरुपत्नी के रूप में ही नहीं देखते थे, पर अपने गुरु की कृपा से वे जान गये थे कि माँ मनुष्य देहधारी जगन्माता ही हैं। ऐसे ही एक बार की पूजा में महाष्ठमी के दिन स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने १०८ कमल श्रीमाँ के चरणों में अर्पित कर उनकी चरण बन्दना की थी। महाराज की देवीभक्ति के सम्बन्ध में स्वामी तेजसानन्द लिखते हैं, ‘मैं दुर्गापूजा देखने बेलूड़ मठ गया। तब महाराज वहाँ थे। मैंने उन्हें तीनों दिन आरती के समय

पण्डाल में उपस्थित देखा। आरती में बहुत से साधु-ब्रह्मचारी तथा भक्त भी रहते थे। पूजा के बाद माँ की प्रतिमा को हाथ से पंखा झला जाता। एक दिन महाराज शान्तचित्त और भक्तिभाव से माँ को बहुत देर तक पंखा झल रहे थे। वह एक अद्भुत अविस्मरणीय दृश्य था !

एक बार स्वामीजी के बाद श्रीमाँ सारदा देवी कई वर्षों तक बेलूड़ मठ नहीं आई थीं। अतः एक दिन राजा महाराज ने उनसे मठ में आकर चरणधूलि देने का अनुरोध किया। किसी-किसी का कहना है कि वह दुर्गापूजा का समय था। महाराज ने मठ के दक्षिणी द्वार से लेकर मन्दिर तक माँ के स्वागत की व्यापक व्यवस्था की थी। उन दिनों वही मुख्य द्वार था और वहाँ पर उन्होंने माताजी का भव्य स्वागत किया। वहाँ से वे ऊपर मन्दिर में गईं और उसके बाद महापुरुष महाराज के कमरे में गईं। उस कमरे की बड़ी खिड़की के पास एक छोटा-सा बरामदा है। पहले वह बरामदा नहीं था, उसका निर्माण बाद में महापुरुष महाराज की सुविधा के लिए हुआ। माँ कमरे में जाकर उस दरवाजे के आकार की खिड़की के समीप बैठ गईं और वहाँ से मठ-प्रांगण में हो रहे कीर्तन को देखने लगीं। थोड़ी देर बाद वहाँ नृत्य होने लगा, जिसमें महाराज भी नाच रहे थे। भाव के



खिड़की के पास एक छोटा-सा बरामदा आवेग में महाराज स्वयं को सँभाल नहीं पाते थे और उनके गिर जाने का भय था। अतः बाबूराम महाराज उन्हें सहारा देकर अन्दर ले आए और स्वामीजी के कमरे के पश्चिम की ओर के कमरे के ठीक नीचे के कमरे में उन्हें लेटा दिया। बहुत देर बाद भी जब उनकी चेतना नहीं लौटी, तो किसी ने जाकर माताजी को इसकी सूचना दी। माँ ने आकर उनकी छाती का स्पर्श किया और वे होश में आ गए। किसी-किसी का कहना है कि माताजी के प्रसाद खिलाने पर धीरे-धीरे उनकी चेतना लौट आई थी। अस्तु, माताजी बोलीं, ‘नृत्य करते हुए राखाल का समाधि में चले जाना कोई विस्मय की बात नहीं है, क्योंकि उसके पीछे ही मैंने ठाकुर को भी नाचते हुए देखा था।’

सन् १९१८ : अक्टूबर, १९१८ में दुर्गापूजा के समय

माँ कोलकाता के बागबाजार मोहल्ले के उद्घोधन भवन में उपस्थित थीं।

सन् १९३३ स्वामी अखण्डानन्द का स्वप्रदर्शन : स्वामीजी के देहान्त के बाद स्वामी अखण्डानन्द सम्भवतः सन् १९३३ में दुर्गापूजा के लिए बेलूड़ मठ आये थे। पूजा के दिनों में वे घोर रात्रि को स्वामीजी के कमरे के सामने बैठकर दुर्गानाम का पाठ करते थे। पूछने पर कहते कि स्वामीजी को सुना रहे हैं। बष्ठी की रात को उन्होंने सपने में देखा कि स्वामीजी उनके सामने आविर्भूत होकर उन्हें कह रहे हैं, ‘गैंजेस, मेरे कपड़ों में से नैपथेलिन की गन्ध क्यों आ रही है? आज मुझे नये कपड़े नहीं पहनाओगे क्या?’ (बंगाल में दुर्गापूजा उत्सव में नये कपड़े पहनने की रीति प्रचलित है) यह स्वप्न देखकर अखण्डानन्द चौंककर उठ गये और पुजारी को नींद से उठाकर बोले, ‘तुरन्त स्वामीजी के लिए नये वस्त्र ले आओ।’ उसके बाद स्वामीजी का कमरा खोलकर धूप जलाया गया। पुजारी ने लाये नवीन कपड़ों पर अगरू छिटककर दिया। उन्होंने स्वयं स्वामीजी के चित्र को निवेदित किया और पुजारी से मंगलारती करने के लिए कहने लगे। यह सुनकर पुजारी ने विस्मित होकर कहा, ‘महाराज अभी तो रात के ढाई बज रहे हैं।’ इस पर अखण्डानन्द ने पुजारी को कहा, ‘आज ढाई बजने को ही चार बजा ऐसा समझकर मंगलारती करो।’ पुजारी ने वैसा ही किया। तदुपरान्त पुजारी ने अखण्डानन्दजी के चरणों में नतमस्तक होकर साश्रुनयनों से कहा, ‘महाराज! ऐसा दर्शन हमें क्यों नहीं होता? हमें आशीर्वाद दीजिये कि हमें भी स्वामीजी के दर्शन प्राप्त हों।’

सन् १९३७ : महासमाधि के कुछ दिन पूर्व सारगाढ़ी आश्रम में निवास करते समय स्वामी अखण्डानन्द को स्वप्न में वासन्ती-पूजा करने का आदेश मिला था, परन्तु उन्हें ऐसा लगता था कि जब उनके पहले के दो अध्यक्षों का वासन्ती-पूजा का अपूर्ण संकल्प लिए हुये ही देहत्याग हो गया, तब उनके भाग्य में भी शायद वैसा ही लिखा हो सकता है। इसलिए इस उद्देश्य से मण्डप बनाते हुए भी वे उसे दिखाकर आश्रमवासियों से कहते थे, ‘सम्भव है, पूजा देखने का सौभाग्य मुझे न मिले, फिर भी माँ के लिए यह मण्डप बनाया है, इतना ही सोचकर मुझे आनन्द होता है। बाकी सब तुम लोग करना।’

इस प्रसंग का वर्णन स्वामी अनन्दानन्द ने अपने ग्रन्थ

‘स्वामी अखण्डानन्द’ में बहुत ही अच्छे ढंग से किया है –

११ जनवरी को प्रातःकाल गंगाधर महाराज के कमरे में प्रणाम करने जाने पर उन्होंने एक-एक कर प्रायः सभी से फुसफुसाते हुए कहा, “भोर में मैंने स्वप्न देखा – ठाकुर कह रहे हैं कि दुर्गापूजा करा। मैंने कहा – कहाँ दुर्गापूजा! उसमें तो अभी काफी विलम्ब है। इस पर वे बोले, तो फिर वासन्ती पूजा करा। तभी मैंने देखा कि बकुल-वृक्ष के नीचे की कुटिया में माँ की मूर्ति झलमला रही है और ठाकुर उस पार के बरामदे से देख रहे हैं। माँ के नाम पर कितने ही लोग आये हुए हैं! क्या ही आनन्द हो रहा है!” पूजा के नाम पर सभी आश्रमवासियों को आनन्द से उन्मत्त होते देखकर वे बोले, “अरे, कब तक हूँ, मालूम नहीं।

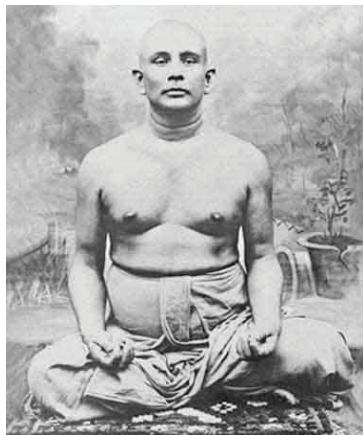


महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) बोले स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज

– वासन्ती पूजा करूँगा। पर उसे देखकर नहीं जा सके। दादा (स्वामी शिवानन्द) भी नहीं देख सके। अब देखो मेरा ही क्या होता है! ” यह सुनकर सभी आश्रमवासियों तथा समवेत भक्तों के मन में एक अज्ञात विपत्ति की छाया आ पड़ी। फिर महाराज का शरीर भी खूब दुर्बल हो चुका था, प्रायः ही वे स्नान नहीं करते और रात में केवल थोड़ा-सा फल का रस ही लेते थे। इन सब के बावजूद वे सारगाढ़ी आश्रम के समस्त कार्यों की देखरेख करते थे। सुबह-शाम पहियेवाली गाड़ी में बैठकर उन्हें पूरे आश्रम-प्रांगण में घुमाकर लाया जाता था। उनके कुसुम-कोमल हृदय को भक्तों का यह निरानन्द भाव सहन नहीं होता था। इसलिये वे सर्वदा वार्तालाप, हास-परिहास तथा भगवच्चर्चा के द्वारा सबको एक स्वर्गीय आनन्द से परिपूर्ण रखते थे। वे बालकों तथा साधु-ब्रह्मचारियों को खेलकूद में भी प्रोत्साहित करते रहते थे। पौष संक्रान्ति के दिन उन्होंने सबके साथ मिलकर वनभोज किया। इसके लिए खिचड़ी के साथ फूल के बड़े बने थे। इस प्रकार एक दिन और आनन्द के तरंगों में बीत गया। कुछ दिनों बाद ही उन्होंने कुम्हार को बुलवाकर देवी की मूर्ति बनाने को कहा। मजदूर पूजा-मण्डप का छप्पर

बनाने लगे। देवी के लिए चँदोवे की भी सिलाई हो रही थी। उस दिन का संकेत धीरे-धीरे सभी लोग भूलते जा रहे थे।

स्वामी ब्रह्मानन्द ने सन् १९१२ कनखल हरिद्वार में और सन् १९२१ में मद्रास में दुर्गापूजा का आयोजन किया था। सन् १९१२ को महाराज की इच्छा से कनखल में १६ से १९ अक्टूबर के बीच दुर्गापूजा प्रतिमा में पहली बार आयोजित की गयी। महाराज कुछ माह पहले ही कनखल दुर्गापूजा की तैयारी के लिए पहुँचे। स्वामी तुरीयानन्द, केदारबाबा और स्वामी अपूर्वानन्द उनके साथ गये। माँ की प्रतिमा हावड़ा के सालकिया मुहल्ले के भक्त ले आये थे। महाराज के सेवक लक्ष्मण महाराज पुजारी थे और स्वामी शुद्धानन्द तन्त्रधारक थे। लक्ष्मण महाराज को पूजा सीखने के लिए महाराज की सेवा से करीब-करीब एक महीने के लिए सेवामुक्त किया गया था। इस उपलक्ष्य में महाराज ने एक दिन हरिद्वार के विभिन्न सम्प्रदाय व अखाड़ों के साधुओं को एक सामूहिक भण्डारे में बहुविध व्यञ्जनों से परितृप्तिपूर्वक भोजन कराया। प्रतिमा विसर्जन के समय महाराज अन्य



स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज

के अनुसार 'सिद्धी' (भांग) दी गयी। उन दोनों महानुभावों ने केवल उसे स्पर्श किया, खाया नहीं। स्वामी तुरीयानन्द ने उसमें दुर्गा-सप्तशती का पाठ नौ दिन किया था। लगभग पूरी सप्तशती उन्हें कण्ठस्थ थी और बिना पुस्तक देखे ही एक घण्टे में उनका पाठ पूरा हो जाता था। शास्त्रों के मतानुसार ऐसे पाठक ही सर्वोत्तम हैं। 'सप्तशती' पाठ में उनकी निष्ठा एक अन्य घटना से भी ज्ञात होती है। १९२० ई. में काशी में निवास के दौरान वे शारीरिक अस्वस्था एवं दुर्बलता के बाद यह पाठ नहीं कर सके। इस पर उन्होंने खेद व्यक्त करते

साधुओं के साथ गंगा-तीर पर उपस्थित थे। दो नौका किराये पर ली गयी थी। एक नौका में प्रतिमा और दूसरी में साधुगण बैठे थे। पर महाराज गंगा-तीर पर ही रहे। विजयादशमी के दिन महाराज तथा स्वामी तुरीयानन्द की उपस्थिति में सबको मिट्टी के कुल्हड़ में प्रथा

में

मिट्टी के कुल्हड़ में प्रथा के अनुसार 'सिद्धी' (भांग) दी गयी। उन दोनों महानुभावों ने केवल उसे स्पर्श किया, खाया नहीं। स्वामी तुरीयानन्द ने उसमें दुर्गा-सप्तशती का पाठ नौ दिन किया था। लगभग पूरी सप्तशती उन्हें कण्ठस्थ थी और बिना पुस्तक देखे ही एक घण्टे में उनका पाठ पूरा हो जाता था। शास्त्रों के मतानुसार ऐसे पाठक ही सर्वोत्तम हैं। 'सप्तशती' पाठ में उनकी निष्ठा एक अन्य घटना से भी ज्ञात होती है। १९२० ई. में काशी में निवास के दौरान वे शारीरिक अस्वस्था एवं दुर्बलता के बाद यह पाठ नहीं कर सके। इस पर उन्होंने खेद व्यक्त करते

हुए कहा था, "इस वर्ष के अतिरिक्त पहले कभी नवरात्रि के समय चण्डीपाठ छूटा हो, ऐसा याद नहीं आता।"

कनखल की इस दुर्गापूजा का वर्णन 'ब्रह्मानन्द चरित' ग्रन्थ में बहुत ही विस्तृत रूप से आया है - १९१२ ई. की २१ मार्च को महाराज स्वामी शिवानन्द, स्वामी तुरीयानन्द एवं अन्य कई साधुओं के साथ हरिद्वार के निकट कनखल आश्रम में उपस्थित हुए। तुषारधवल हिमालय शृंग की गहन भावपूर्ण वातावरण, पतितोद्धारिणी जाह्नवी का सुमधुर कलकल निनाद, महाशक्ति सती की पुण्य जन्मभूमि और लीलास्थली का पवित्र और शुद्ध भावप्रवाह महाराज को वहाँ सर्वदा गम्भीर भाव में निमग्न रखते। उन्होंने वहाँ दुर्गापूजा करने की इच्छा प्रकट की। महाराज के आदेश पर बंगाल से प्रतिमा मँगवा कर सेवाश्रम में समारोह सहित दुर्गापूजा अनुष्ठित हुई। हिमालय पादपीठ और युगों-युगों से साधु जनसेवित पुण्यभूमि में देवी की पूजा ने अत्यन्त आनन्दमय वातावरण की सृष्टि की। पूजोत्सव के उपलक्ष्य में महाराज ने एक बड़े सामूहिक भण्डारे में वहाँ के साधु समाज को आमन्त्रित किया। बहुत-से साधु भण्डारे में आये। उन सभी को विभिन्न प्रकार के मिष्टान्न आदि से तृप्तिपूर्वक भोजन कराया गया। उनमें से अनेक लोग महाराज के तेज लावण्यमण्डित सुन्दर शरीर और मधुर व्यवहार को देखकर मुग्ध हुए। कोई-कोई महाराज के पास सत्त्रसंग करने आते। जो भी हो, इस घटना के बाद वहाँ के साधु समाज की धारणा बहुत कुछ बदल गई थी।

दुर्गोत्सव के समापन होने पर महाराज, स्वामी शिवानन्द, स्वामी तुरीयानन्द और सेवकगण काशीधाम में उपस्थित हुए। उन लोगों के आगमन से आश्रम में आनन्दोत्सव हो गया। यहाँ कालीपूजा का अनुष्ठान करने का महाराज ने संकल्प किया था। दोनों आश्रमों के साधु-ब्रह्मचारीगण उत्साह और उमंग से मत्त हो उठे। अविलम्ब स्थानीय कारीगर बुलाकर प्रतिमा तैयार करने की व्यवस्था हुई। महाराज के निर्देश पर काशी और कोलकाता से पूजा सामग्री संचित कर पूजा-भण्डार पूर्ण किया गया। इधर श्रीमाँ वायु परिवर्तन के लिए काली-पूजा के तीन दिन पूर्व ५ नवम्बर को काशी आई। उनकी उपस्थिति में समारोहपूर्वक श्यामापूजा आयोजित हुई। कुछ दिन बाद वृन्दावन से आए कई हिन्दी भाषा-भाषी अभिनेताओं ने 'अद्वैताश्रम' में 'रासलीला' का अभिनय किया। इसे देखकर श्रीमाँ ने खूब आनन्द प्रकट किया

और राधा तथा कृष्ण की भूमिका करनेवाले दोनों बालक अभिनेताओं को रूपये देकर प्रणाम किया। ३० दिसम्बर को श्रीमाँ का जन्मोत्सव दिवस था। भक्त नुपेन चट्टोपाध्याय के प्रयास से उत्सव में ऐसा समारोह हुआ था कि लोग कहते, आश्रम प्रतिष्ठा के बाद से इस प्रकार का आनन्दोत्सव पहले कभी नहीं हुआ। उस दिन श्रीमाँ ने सभी त्यागी सन्तानों को एक-एक सूती धोती आशीर्वाद के रूप में दिया और महाराज को एक रेशमी वस्त्र दिया। इस वैष्णवी की ओर किसी के इशारा करने पर श्रीमाँ ने हँसते हुए कहा, “राखाल अपना मानस-पुत्र जो है।”

सन् १९१३ काशी अद्वैत आश्रम में दुर्गापूजा का आयोजन हुआ। स्वामी अम्बिकानन्द (नीरद महाराज) की जननी निस्तारिणी देवी के नाम पर दुर्गापूजा करना तय हुआ। उनके विशेष अनुरोध पर महाराज ४ अक्तूबर, १९१३ को सदल-बल हावड़ा से काशीधाम रवाना हुए। सन् १९१९ में काशी के अद्वैत आश्रम में दुर्गापूजा हो रही थी। महाष्टमी के दिन देवी के चरणों में पुष्पांजलि देने स्वामी अद्भुतानन्द भी पूजा-मण्डप में आये थे। अंजलि देने के बाद वे हरि महाराज को देखने सेवाश्रम की ओर चले।

काशी की इस दुर्गापूजा का वर्णन ‘ब्रह्मानन्द चरित’ ग्रन्थ में बहुत ही विस्तृत रूप से है – श्रीरामकृष्ण-शरणागता नवगोपाल बाबू की भक्तिमती पत्नी निस्तारिणी देवी की हार्दिक प्रार्थना पर महाराज पुनः १९१३ ई. के ५ अक्तूबर को काशी आए एवं निस्तारिणी देवी के नाम से आयोजित दुर्गापूजा में सम्मिलित होकर सबको आनन्द से मत्त कर दिया। महाराज के आदेश से अम्बिकानन्द के नेतृत्व में अद्वैताश्रम और सेवाश्रम के बहुत-से साधु-ब्रह्मचारी समवेत होकर भजन-कीर्तन का अभ्यास करते रहे। कुछ ही दिनों में सुरतान-लय सहित गाने में आश्रमवासी निपुण हो गए। आमंत्रित हो यह भजन-कीर्तन मण्डली दुर्गाबाड़ी और अन्नपूर्णा मन्दिर में जाकर प्रायः तीन घण्टे तक संगीत प्रस्तुत कर सभी को मुग्ध कर देती। इस मण्डली के साथ जब महाराज उपस्थित रहते, तो एक उच्च भाव का उद्दीपन होता, एक अपूर्व घनीभूत आध्यात्मिक वातावरण निर्मित हो जाता।

सन् १९२१ में महाराज तथा स्वामी शिवानन्द मद्रास गये थे, तब ८ से १० अक्तूबर के बीच प्रतिमा में दुर्गापूजा का आयोजन हुआ और भक्तों को बड़े आनन्द का अनुभव हुआ। महाराज ने पूजा में बड़े ही उत्साह से भाग लिया।

बहुत बड़ी दुर्गा प्रतिमा कोलकाता से रेल के स्पेशल वैगंगन से श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल दादा ले आये थे। बंगलोर मठ के अध्यक्ष स्वामी निर्मलानन्द भी पूजा के समय पधारे थे। इन महानुभावों की उपस्थिति से वहाँ का वातावरण मानों आध्यात्मिकता से परिपूर्ण हो गया था। उसी वर्ष काली-पूजा भी प्रतिमा में आयोजित की गयी थी।

स्वामी सर्वज्ञानन्द लिखते हैं, ‘महाराज सन् १९२१ में मद्रास पधारे थे। उस वर्ष महाराज की वहाँ प्रतिमा में दुर्गापूजा मनाने की इच्छा थी। कोलकाता से दुर्गा-प्रतिमा लाई गयी। उसका खर्च करीब ५०० रुपये हुआ, जोकि उन दिनों बहुत ही अधिक था। मुझे फल काटना, फूल तोड़ना आदि पूजा की तैयारी का काम दिया गया। वह एक अद्भुत उत्सव था। स्वामी शिवानन्द और रामलाल दादा (ठाकुर के भतीजे) भी वहाँ उपस्थित थे। विजया दशमी के दिन स्टुडेण्ट होम में एक नाटक का आयोजन हुआ था। श्रीकृष्ण का अभिनय करनेवाले कलाकार ने बहुत ही अच्छा अभिनय किया। उसने पीले रंग के वस्त्र और मोर-मुकुट परिधान किया था और हाथ में बाँसुरी थी। नाटक समाप्त होने पर उस कलाकार को एक व्यक्ति महाराज के पास ले आया। वे मोटर साईकिल पर आये थे। कलाकार का पूरा शरीर सफेद कपड़े से ढँका हुआ था। वे साईडकार में बैठे थे। (मोटर साईकिल को जो तीसरा पहिया लगाकर एक व्यक्ति के लिए बैठने हेतु जगह की जाती है, उसे साईडकार कहते हैं।) उनके आने की खबर महाराज को देने हेतु एक भक्त बगल के द्वार से अन्दर आया, तो उसने देखा की महाराज पहले ही हॉल में उपस्थित हैं। बीच के द्वार से जब वह कलाकार हॉल के अन्दर आया, तो महाराज उसके चरणों में गिर पड़े और उसे साष्टांग प्रणाम किया। उस देवी दृश्य का मैं एकमात्र साक्षी था। भगवान् श्रीकृष्ण साक्षात् मेरे सामने उपस्थित होते, तो भी मैं उन्हें इतना सम्मान नहीं देता, जितना महाराज ने उस कलाकार को दिया था। एक साधारण व्यक्ति के प्रति महाराज का इतना सम्मान देना मेरी समझ के बाहर था। पर महाराज उस कलाकार में प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण को देख रहे थे। इस घटना का मेरे मन पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। प्रतिदिन सस्थ्या को साधु और भक्त भजन गाया करते, महापुरुष महाराज तबला बजाते और राजा महाराज एवं रामलाल दादा आमने-सामने एक घेरे में नाचते थे। अन्य भक्त भी उनके साथ नाचते थे। महाराज अर्धोन्मीलित नेत्रों से तालियाँ बजाकर नाचते थे। वे

मानो नशे मे मत होकर नाच रहे थे। इसे भावसमाधि कहते हैं, यह मैं श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ने के बाद जान पाया था।

इस दुर्गापूजा के बारे में श्री.सी.रामानुजचारी लिखते हैं – राजा महाराज की उपस्थिति में मद्रास मठ में प्रथम बार बंगाल जैसी दुर्गापूजा की गयी। मेरी छोटी बेटी पद्मा



मद्रास मठ में प्रतिमा में दुर्गापूजा, १९५२ ई.

की कुमारी पूजा हुई थी। उस दिन से महाराज उसे 'माँ, माँ' कहकर पुकारते थे। वे अक्सर मेरे घर आकर उसे मिठाइयाँ देते थे। पूजा के अन्तिम दिन महाराज और रामलाल दादा ने मठ के हाँस में नृत्य किया था। वह एक अद्भुत दृश्य था !

१० दिसम्बर, १९१६ को महाराज कन्याकुमारी गये और वहाँ एक सप्ताह तक रुके थे। इस दौरान महाराज ने कुछ कुँवारी कन्याओं को भरपेट भोजन कराकर उन्हें वस्त्र तथा अन्य उपहार देकर कुमारी-पूजा की थी। पूजा के बाद महाराज देवी भाव से उन कुमारियों के सामने नतमस्तक भी हुए थे।

सन् १९२१ में राजा महाराज ने मद्रास में दुर्गापूजा प्रतिमा में की थी। परवर्तीकाल में भी सन् १९५२ से १९५४ के बीच लगातार तीन वर्ष तक वह प्रतिमा में ही की गयी थी। इस उपलक्ष्य में बष्ठी से चण्डीपाठ, महाष्टमी को विशेष पूजा तथा दशमी के दिन शान्ति जल प्रदान किया गया था। इन कार्यक्रमों में बड़ी मात्रा में भक्तों की भीड़ इकट्ठी हुई थी। सन् १९०६ में भी नवरात्रि उत्सव स्वामी रामकृष्णानन्द महाराज ने प्रचलित दुर्गापूजा पद्धति के अनुसार मनाया था। नवमी के दिन हवन के साथ दुर्गापूजा सम्पन्न हुई थी। यह सब ठाकुर की प्रतिमा के सामने किया गया था। उस वर्ष

दिवाली की रात को कालीपूजा भी उन्होंने पारम्परिक विस्तृत पद्धति से न मनाकर संक्षेप में की थी।

गिरीशचन्द्र घोष और दुर्गापूजा : किसी व्यक्ति की मृत्यु देखने से गिरीश एक समय नास्तिक हो गये थे। सन् १८६६ से १८७३ तक वे इस स्थिति में थे। वे अपने स्वभाव के अनुरूप उस भाव का प्रदर्शन लोगों के सामने भी करते। एक बार उनके पड़ोसियों ने उनकी परीक्षा लेने के लिए उनके आँगन में दुर्गा की एक प्रतिमा चुपके से रख दी। जब गिरीश ने यह देखा, तो वे समझ गये कि यह पड़ोसियों की करनी है। वे अपने कमरे में आए और दाढ़ पीकर एक कुल्हाड़ी लेकर प्रतिमा को तोड़ने दौड़े। कोई भी उनके पास आने की हिम्मत नहीं कर रहा था। उनकी बड़ी बहन ने उन्हें रोकने की कोशिश की पर सब व्यर्थ। उन्होंने उस प्रतिमा के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उसी रात गिरीश को उच्च ज्वर आया और उनकी बहन ने देवी की क्षमा याचना कर विशेष भोग की व्यवस्था की। गिरीश का यह भाव बाद में नष्ट हुआ।

सन् १८७७ में गिरीश ने अपने पहले दो संगीत नाटक 'आगमनी' और 'अकालबोधन' नेशनल थिएटर में प्रस्तुत किये। दोनों नाटक दुर्गापूजा पर आधारित थे। आगमनी में उन्होंने देवी उमा के अपने मायके पधारने को चित्रित किया था, तो अकालबोधन में प्रभु राजा रामचन्द्र के दुर्गापूजा की प्रस्तुति थी। ये नाटक उन्होंने 'मुकुताचरण मित्र' इस उपनाम से प्रस्तुत किया था।

१९ सितम्बर, १८८५ के दिन गिरीश ने अपना 'बुद्धदेव-चरित' नामक संगीत नाटक स्टार थिएटर में प्रस्तुत किया। नन्दलाल बसू नामक एक धनी जमीन्दार ने जब वह नाटक दुर्गापूजा के पहले देखा, तो वे बुद्धदेव के अहिंसा के प्रचार से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने दुर्गापूजा में बलि देने के लिए जो बकरे लाए थे,



गिरीशचन्द्र घोष

उन्हे मुक्त कर दिया। उसी साल से उन्होंने पूजा में पशु-बलि की प्रथा बन्द कर दी।

सन् १९०७ में गिरीश ने अपने घर दुर्गापूजा का आयोजन कर श्रीमाँ को विशेष रूप से निमन्त्रित किया था। श्रीमाँ ने दुर्गापूजा में उपस्थित होकर गिरीश पर आशीर्वाद का वर्णण किया था। दुर्गापूजा में श्रीमाँ की उपस्थिति से गिरीश के लिए मानो माँ दुर्गा के द्वारा पूजा-ग्रहण करने का संकेत था।

पूजा में बलिप्रथा : वैदिक काल में यज्ञ में गोवत्स तथा अश्वमेध यज्ञ में अश्व की बलि देने की प्रथा थी। उस पशु के मांस की यज्ञ में आहुति दी जाती थी। तान्त्रिक पूजा में भी बलि की विधि है। पर पशु-बलि के बदले गत्रा, केला, कुम्हड़ा (सफेद कुम्हड़ा), सुपारी आदि की बलि विधिसम्मत है। मनुष्य में वास कर रहे पशु-वृत्ति के विनाश का बाह्य प्रतीक बलि प्रथा है। पर अपने अहंकार को निवेदित करना, अहंकार की बलि देना ही श्रेष्ठ बलि है। अपना रक्त दान करना आत्मबलिदान का, आत्मसमर्पण का स्थूल प्रतीक है। कालीपूजा में इस तरह की पशुबलि होती है। कहीं-कहीं दुर्गापूजा में भी पशुबलि की प्रथा है। बंगाल में बलि दिये गये पशु के मांस को ‘महाप्रसाद’ कहते हैं। कोई भी अन्न पहले भगवान को निवेदित कर फिर ग्रहण करना चाहिए। इससे वह प्रसाद बन बन जाता है।

बलि के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के विचार –

श्रीरामकृष्ण और अधर का संवाद

मध्याह्न के आहार के बाद श्रीरामकृष्ण ने थोड़ा-सा विश्राम किया। धीरे-धीरे अधर तथा अन्य भक्तगण आ पहुँचे। अधर सेन पहली बार श्रीरामकृष्ण का दर्शन कर रहे हैं। अधर का मकान कलकत्ता, बेनेटोला में है। वे डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं। उम्र उन्तीस-तीस वर्ष की होगी।

अधर (श्रीरामकृष्ण के प्रति) – महाराज, मुझे एक बात पूछनी है। क्या देवता के सामने बलि चढ़ाना अच्छा है? इससे तो जीव-हिंसा होती है !

श्रीरामकृष्ण – शास्त्र के अनुसार, मन की एक विशेष अवस्था में बलि चढ़ायी जा सकती है। ‘विधिवादीय’ (कर्मकाण्ड्य) बलि में दोष नहीं है। जैसे, अष्टमी के दिन एक बलि चढ़ाते हैं। परन्तु यह विधि सभी अवस्था के लिए नहीं है। मेरी अब ऐसी अवस्था है कि मैं सामने रहकर बलि नहीं देख सकता हूँ।

“फिर ऐसी भी अवस्था होती है कि सर्वभूतों में ईश्वर को देखता हूँ। चीटियों में भी वे ही दिखायी देते हैं। ऐसी स्थिति में एकाएक किसी प्राणी के मरने पर मन में यही सान्त्वना होती है कि उसकी देह मात्र का विनाश हुआ। आत्मा की मृत्यु नहीं है। (न हन्त्यते हन्यमाने शरीरे। गीता-२।२०)”

एक बार महापुरुष महाराज से एक संन्यासी ने पूछा कि पशु-बलि के बिना पूजा हो सकती है या नहीं? उत्तर में महाराज ने कहा था, “क्यों नहीं होगी? वे ही तो वैष्णवी शक्ति के रूप में अवतीर्ण हुई हैं। हमारे मठ में पशु-बलि नहीं दी जाती। हमारी तो सात्त्विक पूजा है। शास्त्र में मनुष्य की प्रकृति के अनुसार तीन तरह की पूजा का विधान है – सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। सात्त्विक पूजा में कोई भी बाह्य आडम्बर नहीं होता है, केवल भक्ति से पूजा होती है। निष्काम भाव से माँ की प्रीति के लिए पूजा करते हैं। हम वैसी ही पूजा करते हैं। जो राजसिक और तामसिक होते हैं, उनकी पूजा भी उसी तरह होती है। उनके लिए शास्त्र में पशु-बलि की व्यवस्था है।” उन्होंने और एक बार कहा था, “वराहनगर मठ से ही स्वामीजी ने दुर्गापूजा प्रारम्भ की थी। पर तब घट-पट में पूजा होती थी। उस समय एक बकरे का बलि दी गयी थी। वह सुरेशबाबू ने दी थी। बलि के बाद सम्पूर्ण मांस की होम में आहुति दी गयी थी।”

रामकृष्ण संघ के आरम्भिक दिनों में स्वामीजी की इच्छा से वराहनगर मठ में १० मई, १८८७ को कालीपूजा हुई थी। तन्त्र मतानुसार पूजा, होम तथा बकरे की बलि दी गयी थी। इस बलि के कारण कुछ लोगों ने तीव्र प्रतिक्रिया की थी। स्वामीजी ने आश्वस्त करते हुए कहा था, ‘‘साधना के लिए यह अन्तिम बार है, इसके बाद नहीं दिया जाएगा।’’ १९०१ में जब बेलूड़ मठ में पहली बार प्रतिमा में दुर्गापूजा की गयी थी, तब स्वामीजी बलि देना चाहते थे, किन्तु बहुत से लोगों को इससे दुखित होते देखकर श्रीमाँ ने कहा था, ‘‘इन सबको इससे दुख हो रहा है, तो बलि नहीं देने से भी होगा।’’ तब से रामकृष्ण संघ में दुर्गापूजा में बलि नहीं दी जाती। श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा देवी ने तान्त्रिक पूजा के पशु-बलि के शास्त्र-विधान को अस्वीकार या अपमान नहीं किया, पर ऐसा करने की अनुमति भी उन्होंने नहीं दी थी।

रामकृष्ण संघ के १२वें अध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज पुराने इतिहास के साक्षी थे। उन्होंने अपने

‘श्रीरामकृष्ण-भाव-आन्दोलन में माँ सारदा का अवदान’ नामक एक व्याख्यान में कहा था, ‘एक बार स्वामीजी ने मठ में बलिदान किया। माँ ने सुनकर पूछा - किसने किया? नरेन्द्र ने किया। बोलीं - बाबा, अब नहीं करना, अब यह नहीं चलेगा। माँ की एक ही बात से स्वामीजी शान्त हो गए। इतने तीक्ष्ण-बुद्धि-सप्तप्त्र स्वामीजी, जिन्होंने ठाकुर की भी बातों को एक बार में कभी नहीं माना, माँ ने जैसे ही कहा, मस्तक झुका लिया। बलि बन्द हो गई।’

होम : प्राचीन भारत में वैदिक युग में यज्ञ एक प्रधान धार्मिक अनुष्ठान था। किन्तु आज पूजा, होम समग्रोत्रिय अनुष्ठान है। पूजा में जैसे विविध कामनाओं से देवता को मन्त्रोच्चार के साथ विभिन्न वस्तुएँ (जैसे फूल, बेलपत्ता, नैवेद्य आदि) देवता के सामने रखे पात्र में अर्पित की जाती हैं, वैसे ही होम में विभिन्न वस्तुएँ होम की अग्नि में अर्पित की जाती हैं। प्राचीन काल में अग्नि को देवता का मुख समझते थे। मन्त्रोच्चारण के साथ देवता को निवेदित द्रव्य को अग्नि उस देवता के पास पहुँचा देगा, ऐसा विश्वास था। अग्नि शक्ति का बाह्य प्रकाश है, इसीलिए अग्नि को समर्पित करना अर्थात् महाशक्ति को प्रत्यक्ष समर्पित करना है। जिस देव या देवी के नाम से होम किया जाता है, उसके नाम से ही अग्नि का नामकरण होता है। दुर्गापूजा में जो होम होता है, उसे ‘सप्तशती होम’ कहते थे।

देश-देशान्तर में दुर्गा : दुर्गापूजा में देश-देशान्तर की अधिष्ठात्री देवी को प्रणाम निवेदित किया जाता है। वे सब माँ दुर्गा के अंश-स्वरूप हैं। भारत के बाहर भी विभिन्न कालखण्ड में देवी की उपासना या मातृपूजा की जाती थी। जैसा कि ग्रीस की रूही देवी, एशिया माइनर (इटली आदि देश) की शिविली देवी, इजिप्त की इस्थार देवी और आयसिस देवी, भूमध्यसागर के क्रिट द्वीप की सिंहवाहिनी देवी, जापान की चनघी देवी, चीन के कन्टॉन शहर के बौद्ध मन्दिर की शतभुजा देवी आज भी कई जगह इन सबकी पूजा होती है। इन सब देवियों की आकृति देवी दुर्गा से मिलती-जुलती है और वहाँ भारत के दुर्गापूजा का प्रभाव देखने का मिलता है। भारत के व्यापारी कम्बोज, चीन, कोरिया आदि विभिन्न देशों में जाते थे और माँ दुर्गा की प्रतिमा को साथ ले जाते थे। वे वहाँ उस प्रतिमा की स्थापना करते थे। ईसा के ३००० वर्ष पूर्व क्रिट द्वीप में सिंहवाहिनी देवी की एक मूर्ति मिली थी। जावा द्वीप में

चण्डी के एक हजार मन्दिर इसा के ५२७ वर्ष पूर्व के हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि देवी दुर्गा का अधिष्ठान केवल भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी प्राचीन काल से था और कई जगह आज भी है। पुराणों में भी देश-देशान्तर में स्थित देवी का उल्लेख मिलता है, विशेषकर पद्मपुराण में तो देवी का नाम और स्थान इसकी एक तालिका दी हुई है। पर आज उनमें से कुछ स्थान अज्ञात हैं। बृहत्वन्दिकेश्वर पुराण में भी ऐसी ही एक तालिका दी हुई है, जिसके अनेक स्थान आधुनिक काल में परिचित हैं। पर देवीभागवत की तालिका अलग है।

भारतीय तन्त्रशास्त्र में भी देशदेशान्तर में देवी का उल्लेख मिलता है। कहीं-कहीं देवी दुर्गा भीम, चण्डी, चण्डिका आदि नाम से पूजित होती हैं। ५१ शक्तिपीठों में जो काली अधिष्ठित हैं, उनको छोड़कर तन्त्र में अनेक देवियों का उल्लेख है, जो देवी दुर्गा जैसे ही हैं। कहीं-कहीं देवी ने स्थानीय अधिष्ठात्री देवी का रूप ग्रहण किया है, जैसे बंगाल के बाकुड़ा जिले के उत्तरबार ग्राम में दशभुजा शिला मूर्ति है, जो झगड़ाभंजनी देवी के नाम से परिचित और पूजित है। विष्णुपुर के राजा के यहाँ महामारी की देवी खच्चर-वाहिनी के नाम से पूजित हैं। वे मृणमयी मूर्ति में अधिष्ठित हैं और उनकी शारदीय दुर्गापूजा के समय महानवमी के दिन विशेष रूप से पूजा होती है।

हिन्दुओं की देवियाँ बौद्धतन्त्र में प्रवेश कर वहाँ एकीभूत हुई हैं। हिन्दुओं की उमा, हिंगलक्ष्मी उमा, चण्डिका, लिंगकाली, वसुंधरा आदि देवियों का रूपान्तर हमें बौद्धतन्त्र में चण्डिका, ब्रजबाराही, ब्रजयोगिनी, भट्टारिका-आर्यतारा, महामायुरी, जंभला, हेरूका आदि नामों में हुआ है। देश-देशान्तर में हमें जो चण्डिका देवी का उल्लेख मिलता है, उसका पौराणिक चण्डी के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। बहुशताब्दियों के क्रम-विकास के बाद आज यह देवी रूप में प्रतिष्ठित हुई है। मार्कण्डेय पुराण के अनुसार दुर्गापूजा में चण्डीपाठ आवश्यक बताया गया है।

सारांश : अन्त में यही महिषासुरमर्दिनी देवी का आवाहन तथा आराधना है – हमारे अन्तर्जगत और बहिर्जगत के असुररूपी अशुभ शक्ति के वध की ही आराधना है। यही देवी सृष्टि, स्थिति तथा विनाश का कारण होकर

श्रीरामकृष्ण-गीता (४)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पूर्व में इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के स्वामी कृष्णामृतानन्द जी ने की है। – सं.)

श्रीमहाराज उवाच

पृष्ठः परमहंसेन तोतापुरीर्दिग्म्बरः ॥

किं स्यात् ध्यानस्य कर्तव्यं भावेऽस्मिन् सततं तव ॥ १६ ॥

अन्वय : श्रीमहाराजः (श्री महाराज ने) उवाच (कहा) दिग्म्बरः (नंगा) तोतापुरीः (तोतापुरी) परमहंसेन (परमहंस के द्वारा) पृष्ठः (पूछे जाने पर) तव (आपको) अस्मिन् (इस) भावे (अवस्था में) [स्थिते-अपि (अवस्थान करते हुए भी)] सततम् (प्रतिदिन) ध्यानस्य कर्तव्यं (ध्यान करने का प्रयोजन) किम् (क्या) स्यात् (है) ॥ १६ ॥

अनुवाद : श्री महाराज ने कहा नंगा तोतापुरी से परमहंस जी के द्वारा यह पूछे जाने पर कि आपको इस अवस्था में रहते हुए भी प्रतिदिन ध्यान करने का क्या प्रयोजन है? ॥ १६ ॥

श्रीतोतापुरी उवाच

घटीनित्यं न मृष्टा चेत् सा कलङ्कमयी भवेत् ।

अशुद्धं स्यात्तथाचित्तमृते ध्यानं निरन्तरम् ॥ १७ ॥

अन्वय : श्रीतोतापुरीः (श्रीतोतापुरी ने) उवाच (कहा) घटी (लोटा) चेत् (यदि) नित्यम् (प्रतिदिन) न (नहीं) मृष्टा (घिसा जाये) सा (वह) कलङ्कमयी (कलङ्कयुक्त) भवेत् (हो जाता है) [तथा (उसी प्रकार)] निरन्तरम् (नियमित) ध्यानम् (ध्यान) ऋते (न करने पर) चित्तम् (चित्त) अशुद्धम् (अशुद्ध) स्यात् (हो जाता है) ॥ १७ ॥

अनुवाद : श्रीतोतापुरी ने कहा – लोटा को यदि प्रति दिन न घिसा जाये, तो वह कलङ्कयुक्त हो जाता है। उसी प्रकार नियमित ध्यान न करने से चित्त अशुद्ध हो जाता है ॥ १७ ॥

श्रीरामकृष्ण उवाच

कलङ्को न भवेत्तत्र सा चेद्देममयी घटी ।

सच्चिदानन्दलाभे न साधनस्य प्रयोजनम् ॥ १८ ॥

अन्वय : श्रीरामकृष्णः उवाच (श्रीरामकृष्ण बोले) सा (वह) चेत् (यदि) हेममयी (सोने का) घटी (लोटा) स्यात् (हो) तत्र (तब) कलङ्कः (कलङ्क) न भवेत् (नहीं होता है) [अर्थात् (अर्थात्)] सच्चिदानन्दलाभे [सति] (सच्चिदानन्द-प्राप्ति होने पर) साधनस्य (साधन करने की) [पुनः (और)] प्रयोजनम् न

[अस्ति] (प्रयोजन नहीं है) ॥ १८ ॥

अनुवाद :

श्रीरामकृष्ण बोले – यदि सोने का लोटा हो, तो वह कलंकित नहीं होता है अर्थात् सच्चिदानन्द की प्राप्ति हो जाने पर साधन करने का और प्रयोजन नहीं है ॥ १८ ॥



अनुलोमो विलोमश्च विचारो द्विविधो मतः ।

मज्जाया हि तथा कोशो मज्जा कोशस्य वै यथा ॥ १९ ॥

अन्वय : विचारः (विचार) द्विविधः (दो प्रकार) इति (यह) मतः (जानो) अनुलोमः-विलोमश्च (अनुलोम और विलोम) यथा (जैसा) कोशस्य वै (आवरण का ही) मज्जा (मज्जा) तथा (और) मज्जायाः हि (मज्जा का ही) कोशः (आवरण) ॥ १९ ॥

अनुवाद : विचार को दो प्रकार से जानो – अनुलोम और विलोम। जैसे आवरण का ही मज्जा और मज्जा का ही आवरण।

अस्तीतरेतरो भावोऽस्मद्युस्मद्वस्तुसंविदि ।

सत्यस्मदिति संबोधे युस्मद्वोधोऽपि विद्यते ॥ २० ॥

अन्वय : अस्मद्-युस्मद्-वस्तु-संविदि ('मैं' और तुम ज्ञान में) इतर-इतरः (परस्पर) भावः (सम्बन्ध) अस्ति (है) अस्मद् (मैं) इति (यह) सम्बोधे (बोध) सति (रहने पर) युस्मद्-बोधः (तुम बोध) अपि (भी) विद्यते (रहता है) ॥ २० ॥

अनुवाद – ‘मैं’ और ‘तुम’ ज्ञान में परस्पर सम्बन्ध है। ‘मैं’ यह बोध रहने पर ‘तुम’ बोध भी रहता है। (**क्रमशः**)

सारगाढ़ी की स्मृतियाँ (१०८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्घोषन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

११.०४.१९६४

प्रश्न – कल रात में मैंने एक रोचक स्वप्न देखा – कुछ किशोर बालक हैं, उनमें से एक को एक शुष्क मुखवाले साधु ने कोई पुस्तक दी। पुस्तक को हिला-डुलाकर देखा, तो उसमें ठाकुर का एक चित्र तथा उसी के साथ अन्य सब साधुओं के भी चित्र हैं। उसे देखते ही मैं बोल पड़ा – उत्कृष्ट और अपकृष्ट। ऐसा कहते ही मन में आया कि इनके सामने ऐसा कहना ठीक नहीं हुआ, इसीलिए छिपाने का प्रयत्न कर रहा हूँ, तभी नीद टूट गई। मुझे तो देख ही रहे हो, रामकृष्ण के सम्बन्ध में एकदम कट्टर हूँ।

इस स्वप्न के पीछे कई बातें हैं। कल तुमने महेन्द्र दत्त की पुस्तक पढ़ी थी, उसमें अनेक सूचनाएँ हैं, किन्तु कुछ ऐसी बातें कही गई हैं, जिन्हें नहीं कहने से भी काम चल जाता। फिर ब्रह्मचारी निः... विजय गोस्वामी की जीवनी पढ़ता है, उसमें इन्हीं सब बातों की चर्चा हो रही है। स्वामीजी के दोनों ही भाई प्रतिभाशाली थे, किन्तु कोई भी प्रसिद्ध नहीं हो सका। अच्छा ही हुआ, यदि वे लोग प्रसिद्ध होते तो फिर ठाकुर का भाव प्रचारित नहीं होता, लोग मठ की इतनी परवाह नहीं करते। समझते हो न, स्वामीजी के भाई हैं, फिर तो लोग उन्हें सिर पर उठाकर नाचते। माँ के अन्तर्गतों में भी देखो न – विजय, गणपति, खुदि, किन्तु उनलोगों की कैसी दुर्दशा हुई ! देखो, इन्हें भोजन तक नहीं मिलता था। मूर्ख ! माँ की इच्छा से ही ऐसा हुआ है।

अभी तो समाचार-पत्रों का युग है। इस समय थोड़ा प्रचार होने से ही सब बातें चारों ओर फैल जाती हैं। फिर वीरचाँद, नित्यानन्द की तरह छोटे-छोटे दल निर्मित हो जाते।

माँ का खुदि क्या कम है ! मठ में मैंने पहली बार देखा – कैसी अद्भुत मूर्ति ! मैं तो देखकर दंग रह गया। गोपेश पास ही था, मैंने उससे कहा – 'यह कौन है?' वह बोला – 'माँ का खुदि-फुदि है।' मैंने कहा अच्छा ! इसके

बाद भी मैंने देखा है – वैसा रूप नहीं, किन्तु सुन्दर अवश्य था ! विजय के साथ मेरी खूब घनिष्ठता थी। उसे मैंने कुछ दिनों तक पढ़ाया था।

जितने दिन बीत रहे हैं, यही समझ में आता है कि ठाकुर की इच्छा के बिना पेड़ के पत्ते में भी हिलने की क्षमता नहीं है और ठाकुर की कृपा आदि की सभी बातें सत्य हैं। यदि ठाकुर की कृपा हो, तो सभी बातें सत्य हैं। ठाकुर की कृपा यदि होगी, तो क्या उसे धारण करने के लिए शरीर-मन की तैयारी की आवश्यकता नहीं है ? यम, नियम, आसन आदि करके तत्पर रहने पर उनकी कृपा का अनुभव होता है। इसे कहते हैं – आध्यात्मिक विस्तार।

रा..., नि... और मद्रासी, इन तीनों में एक तो चला गया है। बाकी दो के लिए बड़ा दुख होता है। ऐसा कोई नहीं है, जो उनका मार्गदर्शन करे, उन्हें थोड़ा दिशा-निर्देश दे। नि... मुझे अधिक प्रिय है, वह विनम्र है। जो ऊँचे घर से नहीं आते हैं, उनलोगों से कुछ सविधा भी है – वे अहंकारी नहीं होते, उन्हें अभिनव आकार देकर भाव प्रदान किया जा सकता है। वह ब्रह्मचारी अति उत्तम है – खूब धारणा शक्ति है, अच्छी तरह समझता है। हिल-मिलकर रहने का प्रयास करता है, भाव ग्रहण करता है, किन्तु कितने दिन रहेगा, कौन जानता है !

जब प्रेमेश महाराज सारगाढ़ी में थे, तब उनके आस-पास नवयुवकों की भीड़ लगी ही रहती थी, वे सब अपनी समस्याएँ लेकर निश्चिन्त भाव से चर्चा करते थे। समाज की शिक्षा-व्यवस्था में आन्तरिक जीवन के सम्बन्ध में कोई विचार-विर्माश या चर्चा नहीं होने से महाराज बड़े दुखी होते थे। उनकी अन्तर्वेदना का परिणाम है – 'शिक्षा आन्दोलन' नामक निबन्ध। इसे 'शिक्षा व्यवस्था और समाज का उत्तरदायित्व' नाम से उद्बोधन द्वारा प्रकाशित किया गया है। इस प्रकार की शिक्षा का एक अन्य प्रकार का माध्यम

था रम्य-रचना। 'ज्ञानेन्द्रिय परिचय' नामक यह रम्यरचना सम्भवतः प्रकाशित नहीं हुई। हमारे अन्यान्य लेखों के साथ इसे भी प्रकाशित किया गया। इस रम्य रचना के प्रकाशन के पूर्व रमानन्द महाराज को लिखित दिनांक १५-०४-१९६४ के पत्र को आवश्यक समझते हुए यथावत् उद्धृत किया जा रहा है।

श्री रामकृष्णः

वाराणसी

१५-०४-१९६४

स्नेहभाजन विष्णु,

आसपास रहने पर बीच-बीच में मिलना-जुलना सम्भव होता। फिर इस समय तो यहाँ गर्मी में मानो आग बरसेगी। मई मास में क्या तुम्हारा यहाँ आना सम्भव होगा? तुम्हारा शरीर कैसा है, यह तो मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। श्रीमान सनातन ने दो जाड़ा और एक गर्मी की ऋतु यहाँ बिताई है, इसलिए लगता है कि कुछ कष्ट करके यहाँ रहना तुम्हारे लिये असम्भव नहीं होगा। तुम्हारी माँ का स्वास्थ कैसा है बताना। मेरा शरीर पूर्ववत है। सुनील, सनातन ठीक ही हैं। अनादि बांगलादेश घूमने गया है। अपना कुशल समाचार देना। हमारा स्नेह-शुभेच्छा जानना।

इति

शुभाकांक्षी

प्रेमेशानन्द

ज्ञानेन्द्रिय परिचय

प्राक्कथन

मोटर का मालिक होने से ही मोटर की सवारी नहीं की जा सकती है। जो मोटर के कल्पुर्जे को पहचानता है और मोटर चलाना जानता है, उसे कुछ पैसे देकर, आग्रह करके उसके द्वारा मोटर पर बैठाने पर तभी मोटर की निरापद सवारी की जा सकती है।

यदि अपना मोटर स्वयं चलाना चाहते हो, तो किसी से उसे चलाना सीख लो। अन्यथा गड्ढे में गिरकर स्वयं भी होओगे पस्त और मोटर भी होगा ध्वस्त। सावधान !

मानव शरीर मानो एक कारखाना है। इसके पाँच दरवाजे हैं। इन दरवाजों से दिन-रात असंख्य परिचित-अपरिचित रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द कोलाहल करते हुए

भीतर प्रवेश कर रहे हैं। युवक वृन्द भी नहीं पहचान पाते कि कौन शत्रु है और कौन मित्र। इसलिए जो भी आता है, वह इस कारखाने में निर्बाध रूप से प्रवेश करके कितना उपद्रव और विध्वंस करता है, उसे बता पाना असम्भव है। सौभाग्यवश, अनुभवी अभिभावक जिसके दरवाजे पर पहरा देते हैं, वह बच जाता है। किन्तु ऐसे कितने हैं? अधिकांश युवकों के कारखानों में चोर-डॉकेत घुसकर सारी धन-सम्पदा लूट लेते हैं। हाय ! इसीलिए तो कहा गया है -

कितनी ही सुवास भरी फूलों की कलियाँ।

बिना जतन गिरती हैं भूमि पर या गलियाँ॥

हे युवको ! मानव का देह-मन एक अतिशय जटिल यन्त्र है, जिसके कल-पुर्जे अतीव सूक्ष्म हैं। छोटी उम्र में कहीं भी एक छेद या त्रुटि होने पर जीवनभर उसे ठीक कर पाना कठिन है। यहाँ तक कि कहाँ क्या त्रुटि रह गई है, उसे समझ पाना भी सम्भव नहीं होता।

प्राचीन भारत में सुशिक्षा की सभी व्यवस्थाएँ थीं। किन्तु विलायती लोगों ने आकर सब सत्यानाश कर दिया। अब इस स्वाधीन भारत को आगे ले जानेवाले लोग खोजने से नहीं मिल रहे हैं। तुम सभी लोग सजग होकर खड़े हो जाओ। द्वार-द्वार पर कड़ा पहरा बैठाओ और दिन-रात युगादर्श स्वामी विवेकानन्द को आँखों के सामने रखकर चलो।

उनकी इस वाणी को याद रखो - "इस बार भारतवर्ष केन्द्र है।" (क्रमशः)

पृष्ठ ४५१ का शेष भाग

हमारे अन्तर्कृति और बहिर्कृति का संतुलन बनाए रखती हैं। इस प्रकार देवी 'सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता' और 'मातृरूपेण संस्थिता' भाव से हमारे हृदय में चिरकाल के लिए विराजमान रहेंगी।

हमारे वराहनगर मठ से आरम्भ हुई दुर्गापूजा रामकृष्ण संघ के कनखल, मद्रास तथा काशी इन आश्रमों से प्रारम्भ होकर आज लगभग हर केन्द्र में घट, पट या प्रतिमा में बड़े उत्साह के साथ मनाई जाती है। इस पूजा के केन्द्र स्थान में आज भी केवल श्रीमाँ सारदादेवी ही हैं और उनके आदेशानुसार उनकी बताई पद्धति से मनाई जाती है।

भजन एवं कविता



आश्विन नवरात्री

सुन्दरलाल प्रह्लाद चौधरी

अ – अनूठी दिव्यता माँ दुर्गा काली की,
महिमा महान कर पूजा उपावास ध्यान ।

श् – शक्ति स्वरूपा महालक्ष्मी, सरस्वती,
महिषासुर मर्दिनी इन्हें जान ॥

वि – विश्वजननी शैलपुत्री, ब्रह्मचारणी, चन्द्रघंटा सी शान ।
न – नव सृजन की प्रणेता, कूष्माण्डा, स्कन्दमता,

कात्यानी हरे अज्ञान ॥

न – नवीन उल्लास, कालरात्रि, महागौरी
सिद्धिदात्री देती सद्ज्ञान ।

व – वश में रहते सारे देवता, असुरों
का करती संहार जहान ॥

रा – राष्ट्र नवनिर्माण में वीरों की शक्ति,
संयम से कन्या-पूजा कर दान ।

त्रि – त्रिकाल सन्ध्या, पंचयज्ञ, गायत्री जप,
'सुन्दर' मिले मोक्ष उत्थान ।

भगवान रामकृष्ण परमहंस,
माँ शारदा शक्ति-अवतार ।

धन्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने,
विश्व में किया प्रचार ॥

जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनि

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

जय माँ दुर्गे दुर्गतिनाशिनि,

असुरविनाशिनि सिद्धिप्रदायिनि ।

शक्तिप्रवर्धिनि मोक्षविद्यायिनि, कृपा करो माँ सद्गतिदायिनि ॥

विश्वजननि माँ सिंहवाहिनी, त्रिगुणरूपिणि चित्रकाशिनी ।

भक्तानुग्रहविग्रहरूपिणि, कृपा करो माँ चिर सनातनि ॥

महाकालहृदि नित्यनिवासिनि, दुर्गतिनाशिनि सन्मतिदायिनि ।

भक्तजनार्चित आशीषवर्धिनि, कृपा करो माँ विश्वमोहिनि ॥

निराकार साकार-स्वरूपिणि, गुणातीत माँ, करुणारूपिणि ।

जगदुखहारिणि ब्रह्मस्वरूपिणि, कृपा करो माँ नित्सुखवर्धिणि ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार

झूठी काया झूठी माया, झूठा है संसार ।

सौंचा केवल नाम तुम्हारा जीने का आधार ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार ॥

तुम ज्ञानदायिनी शक्तिदायिनी तुम सृष्टि का आधार ।

तुम ही बंधन तुम ही मुक्ति हो तुम बिन सूना है संसार ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार ॥

तुम नवदुर्गा आदिशक्ति भवानी करती दुष्टों का संहार ।

तुम रामकृष्ण लीला-सहचरी पापी-तापी तारनहार ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वारा ॥

जीवन एक सपना सा लगता, सत्य कहाँ इस मोह-निशा में ।

बिनु तव कृपा न कोई जागता करले जतन हजार ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार ॥

जीवन ज्वालाओं का पिंजर, सुख नाम मात्र, है दुख का घर ।

जग चक्की में पिसता होता दुख का ही विस्तार ॥

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार ॥

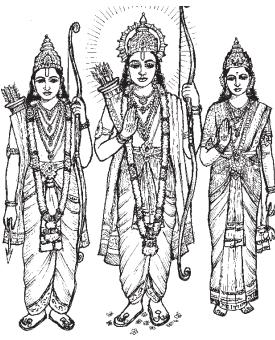
जीवन एक मकड़ी का जाला, अटका मन उसमें हो काला ।

तुमसे नाता जोड़ जो पाये जन्म-मरण से मुक्त हो जाये ।

छुटे यह कारागार ।

माँ तुम्हीं सत्य का द्वार ॥

रामराज्य का स्वरूप (४/१)



पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९८९ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)



**राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं। ।**

७/२१/०

श्रद्धेय स्वामीजी महाराज, समुपस्थित देवियों और भक्त बन्धुओं, पिछले तीन दिनों से रामराज्य के सन्दर्भ में जो चर्चा प्रारम्भ की गई थी, आइए उस पर पुनः दृष्टि डालने की चेष्टा करें। रामराज्य की स्थापना का संकल्प महाराज दशरथ के हृदय में हुआ, किन्तु वे अपने प्रयत्नों में सफल नहीं हुए।

जब कैकेयी के कोप भवन में महाराज दशरथ प्रवेश कर गये और सम्मोहित रूप से उन्होंने कैकेयी से इच्छित वर माँगने के लिये आग्रह किया, तो कैकेयीजी ने दो वरदान माँगे – राज्य भरत को मिले और राम चौदह वर्ष के लिए वन जायें। इन वाक्यों को सुनकर महाराज दशरथ की क्या दशा हुई, उसके लिए गोस्वामीजी ने बड़े ही दार्शनिक भाषा का प्रयोग किया। वे चाहते, तो उसे व्यावहारिक दृष्टि से भी देख सकते थे, पर उसे दार्शनिक दृष्टि से देखते हुए वे जो पंक्ति लिखते हैं, वह आपने पढ़ी होगी। उसके अन्तरंग अर्थ पर दृष्टि डालने की चेष्टा करें। गोस्वामीजी कहते हैं –

**कवनें अवसर का भयउ गयउ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्या नास। ।**

२/२९/०

उन्होंने अयोध्याकाण्ड में दो योगियों की तुलना की। उन दोनों योगियों में एक हैं महाराज श्रीदशरथ और दूसरे हैं श्रीभरत। उन दोनों की स्थिति का अन्तर प्रगट करते हुए वे कहते हैं – जैसे कोई योगी योग-साधना की चरम स्थिति की दिशा में बढ़ रहा हो और उस योग सिद्धि के समय अविद्या माया के द्वारा उसका प्रयत्न नष्ट कर दिया जाये और वह योगी अधोगमी हो जाये, अपने लक्ष्य से च्युत हो

जाये, वही स्थिति महाराज दशरथ की हुई। इसके प्रतिकूल श्रीभरत अयोध्या आते हैं और सारे समाज को लेकर चित्रकूट की यात्रा करते हैं। श्रीभरत ने जब चित्रकूट में प्रवेश किया, तो गोस्वामीजी ने श्रीभरत का स्मरण भी योगी के रूप में किया। पर इस योगी को नष्ट करने में अविद्या सक्षम नहीं हुई। यद्यपि इस योगी के समक्ष भी अविद्या की बाधा थी, पर वह अविद्याजन्य विघ्न-बाधाओं को पार करता हुआ रामराज्य के लक्ष्य तक पहुँचने में सक्षम हुआ। जिस समय उन्होंने चित्रकूट में प्रवेश किया, गोस्वामीजी ने लिखा –

करत प्रबेस मिटे दुख दावा।

जनु जोगीं परमारथु पावा। ॥ २/२३८/३

जैसे योगी ने परमार्थ को पा लिया हो। तो दोनों योगियों के समक्ष विघ्न तो एक ही जैसा था। उस विघ्न के मूल में, अगर सरल शब्दों में कहें, तो कैकेयी ही बाधक बनीं रामराज्य में और कैकेयीजी की बुद्धि में जो परिवर्तन हुआ, उसके मूल में मन्थरा है। तो उसे यों कह सकते हैं कि अविद्या माया का रूप है मन्थरा और कैकेयी उससे आक्रान्त हो चुकी है। तो अविद्यामाया से आक्रान्त जो कैकेयी है, महाराज श्रीदशरथ उस विघ्न को पार करने में सक्षम नहीं हुए। श्रीभरत के सामने भी कैकेयीजी उसी रूप में आई। जिस प्रकार से कैकेयीजी कमिनी के आर्कषण के रूप में दशरथजी के सामने आई, अपने सौन्दर्य से सम्मोहित करने की चेष्टा की और उस आर्कषण और सम्मोहन से महाराज दशरथ अपने को बचा नहीं पाये। श्रीभरत के सामने आर्कषण और सम्मोहन का दूसरा पक्ष है, स्वर्ण प्रलोभन। उसके द्वारा कैकेयीजी ने भरत के मन को सम्मोहित करने की चेष्टा की, अयोध्या के राज्य का प्रलोभन देने की चेष्टा की, किन्तु श्रीभरत उनसे प्रभावित नहीं हुए। यह दोनों में अन्तर है।

मैं मन्थरा और कैकेयी की बात को भी थोड़ा आपके सामने स्पष्ट कर दूँ। कैकेयीजी और मन्थरा का सम्बन्ध क्या है। आध्यात्मिक अर्थों में महाराज दशरथ की तुलना वेदों से की गई है। महाराज दशरथ मानो मूर्तिमान वेद हैं और महाराज श्रीदशरथ की जो तीनों रानियाँ हैं, वे ज्ञान-क्रिया-और उपासना हैं -

**ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या सुमित्रोपासनात्मिका ।
क्रियाशक्तिश्च कैकेयी वेदो दशरथो नृप ॥**

महाराज श्रीदशरथ मूर्तिमान वेद हैं और धर्म के सन्दर्भ में वेद ही सर्वोच्च प्रमाण है। लेकिन आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से एक ऐसी स्थिति आती है, जब व्यक्ति को वेदों से ऊपर उठने की प्रेरणा दी जाती है।

भगवान श्रीकृष्ण का वह वाक्य आपने गीता में पढ़ा होगा, सुना होगा, भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि वेदों की महिमा होते हुए भी ये वेद त्रिगुणात्मक हैं -

त्रैगुण्यविषया वेदा निष्ठैगुण्यो भवार्जुन । (२/४५)

वेद त्रिगुणात्मक हैं, वे त्रिगुण से ऊपर उठे हुए नहीं हैं। अर्जुन यदि तुम समग्रता प्राप्त करना चाहते हो, तो त्रिगुण की सीमा से ऊपर उठने की चेष्टा करो। यही अन्तर श्रीभरतजी और श्रीदशरथजी में है। श्रीदशरथजी अगर मूर्तिमान वेद हैं, तो भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में जो त्रिगुण से उठा हुआ व्यक्ति है, उसके मूर्तिमान स्वरूप श्रीभरत है। वेद त्रिगुण की सीमा को पार नहीं करते हैं, यही समस्या यहाँ पर आती है।

कैकेयीजी मूर्तिमति क्रिया हैं। वेद के मंत्रों में तीन भाग हैं। वेद के कुछ मंत्र ज्ञान के प्रतिपादक हैं, कुछ मंत्र उपासना के प्रतिपादक हैं और कुछ मंत्र क्रिया के प्रतिपादक हैं। यदि मंत्रों की गणना करें, तो वेद-मन्त्रों में क्रिया-प्रतिपादक मंत्र सबसे अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। भगवान कृष्ण ने इसकी ओर भी संकेत किया। उन्होंने कहा -

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति । (२/४३)

वेदों में क्रिया के प्रति अधिक पक्षपात प्रतीत होता है। क्रिया मनुष्य के अन्तःकरण में, भोग और ऐश्वर्य की दिशा में उसे प्रेरित करती है। इसलिए वेदों की यह जो सीमा, मर्यादा है, उससे ऊपर उठने की आवश्यकता है। अगर आप पूरी गहराई से विचार करके देखें, तो क्रिया के साथ जो दोष जुड़ते हैं, वे ही तीनों दोष मन्थरा में विद्यमान हैं और मन्थरा उसे कैकेयी में पैठा देने में समर्थ होती है। उन

तीनों दोषों को क्रम से मैं आपके सामने रखूँगा।

कैकेयी को अविद्या के रूप में प्रस्तुत किया गया। अविद्या से ग्रस्त हैं कैकेयी। तो अविद्या क्या है? उसकी भी व्याख्या आपको रामायण में मिलेगी। जब भगवान श्रीराम ने लक्ष्मणजी से पूछा - माया का स्वरूप क्या है, तो भगवान ने माया के दो भेद बताए। बोले - लक्ष्मण, एक विद्या माया है और दूसरी अविद्या माया। अविद्या माया की व्याख्या करते हुए उन्होंने दो बातें कहीं। माया की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि -

मैं अरु मोर तोर तैं माया ।

जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥ ३/१४/२

कहा जाता है कि सारे संसार के जीव माया के बन्धन में बँधे हुए हैं। भगवान ने कहा - लक्ष्मण, माया की चार शब्दों में व्याख्या की जा सकती है। वे चार शब्द हैं - मैं और मेरापन, तू और तेरापन, बस यही माया है। संसार के जितने व्यक्ति हैं, इसी मैं-मेरेपन और तू-तेरेपन में बँधे हुए हैं। अविद्यामाया की निन्दा करते हुए भगवान राम ने लक्ष्मणजी से कहा कि विद्यामाया का आश्रय लेने पर व्यक्ति ऊपर उठ सकता है, पर जो अविद्या माया को स्वीकार कर लेता है, वह गिर जाता है। अविद्या माया दुष्ट और दुखरूपा है -

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा ।

जा बस जीव परा भवकूपा ॥ ३/१४/५

वह इतनी दुष्ट और दुखरूपा है कि उसके कारण जीव संसार के कुँएँ में गिरा हुआ है। अब इस दृष्टि से जरा मन्थरा के रूप पर आप विचार कीजिए। मैं और मेरापन, तू और तेरापन, यही जो भेद बुद्धि है, वह माया है।

एक बड़ी कठिन समस्या है। क्या? कैकेयीजी क्रिया हैं। बिना भेद बुद्धि के क्रिया हो नहीं सकती। बड़े-बड़े साधकों के सामने भी और जो इस दिशा में बढ़ना चाहते हैं, उनके सामने भी यही एक बहुत बड़ी खाई है। समस्या यह है कि जो भी क्रिया हम करेंगे, उस क्रिया में पग-पग पर भेद होगा और पारमार्थिक दृष्टि से व्यक्ति को अभेद की दिशा में जाना है। यदि वह परमार्थ तत्त्व में प्रवेश करता है, तो अद्वैत की अनुभूति होती है और जब वह व्यावहारिक जगत में प्रवेश करता है, तो द्वैत की अनुभूति होती है। अब इन दोनों में कोई कितना भी बड़ा परमार्थी क्यों न हो, अन्ततोगत्वा जीवन में व्यवहार को स्वीकार करना ही पड़ेगा। जब वह

व्यवहार स्वीकार करेगा, तो द्वैत भी उसे स्वीकार करना पड़ेगा। तो यह संतुलन कैसे रखा जाय कि भेद और अभेद का सामंजस्य अन्तःकरण में बना रहे। इस दृष्टि से देखें, तो मंथरा में पहली कला कौन-सी है और किस तरह से उसने कैकेयीजी को सम्मोहित किया? तो ठीक वही व्याख्या है -

मैं अरु मोर तोर तैं माया।

जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥

मंथरा की भेद बुद्धि स्पष्ट है। अब प्रारम्भ से इसी पर दृष्टि डालें, राम और भरत में द्वैत है कि अद्वैत है? राम और भरत अलग हैं कि राम और भरत में अभिन्नता है? रामचरितमानस में राम और भरत की अभिन्नता का प्रतिपादन बड़े ही मधुर शब्दों में किया गया है। भगवान श्रीराम स्वयं श्रीभरत से अपनी अभिन्नता का वर्णन हनुमानजी से करते हैं।

उत्तरकाण्ड में बड़ा ही मीठा प्रसंग है। भगवान श्रीराम उपवन में बैठे हुए हैं और भगवान का दर्शन करने के लिए सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ये चार महात्मा आते हैं। ये चारों महात्मा बालकवत नग्न, इनकी आयु न जाने कितने वर्षों की है, वे तो सृष्टि के प्रारम्भ से ही विद्यमान हैं, पर सदा पाँच वर्ष के बालक के सामान ही दिखते हैं और नग्न ही रहते हैं। वहीं से प्रारम्भ हो जाता है द्वैताद्वैत की बात। उसका अभिप्राय है कि व्यवहार में व्यक्ति वस्त्र धारण करता है। अगर व्यवहार में कोई व्यक्ति वस्त्र धारण न करे, तो वह असभ्य माना जायेगा। वस्त्र आवरण तो है ही। अब वस्त्र के आवरण को स्वीकार किया जाये कि न किया जाये? यदि थोड़ा ध्यान से पढ़ें, तो हमारे महापुरुषों में भी, हमारे जो आराध्य हैं, वस्त्र-धारण के सन्दर्भ में उनमें भिन्नता है। जैसे भगवान विष्णु हैं, वे वस्त्र धारण करते हैं और भगवान शंकर वस्त्र धारण नहीं करते। अब दोनों में एक संकेत सूत्र है। वह सूत्र यह है कि वस्त्र मर्यादा है कि वस्त्र आवरण है? कपट है, छिपाने की वृत्ति है? इसमें दो बातें हैं। या तो वस्त्र का उद्देश्य समाज की मर्यादा की रक्षा करना है या अपनी कुरुपता को छिपाना है। बस इतनी-सी सूक्ष्म बात है। अधिकांश व्यक्ति वस्त्र को केवल मर्यादा की दृष्टि से स्वीकार नहीं करते। वे अपने आप को जैसे हैं, वैसे न प्रगट करने के लिए वस्त्र धारण करते हैं। वस्त्र के आवरण के द्वारा वे यह चाहते हैं कि दूसरों के मस्तिष्क पर हमारे वस्त्रों का प्रभाव पड़े। बड़ी सूक्ष्म रेखा है। वस्त्र के द्वारा दूसरे को भ्रम में डालना, यह अविद्या वाली बात हुई

और वस्त्र के द्वारा मर्यादा को स्वीकार करना, यह मर्यादा की स्वीकृति है। हमारे जो दोनों ही परमाराध्य हैं, भगवान शिव और भगवान विष्णु, इन दोनों के चरित्र में दोनों पक्षों का दर्शन होता है। भगवान शंकर रूप में साक्षात् अद्वैत तत्त्व हैं, वे साक्षात् ज्ञानघन हैं। उनकी दृष्टि में संसार में जितने भेद हैं, उस भेद का अभाव है। उनकी दृष्टि में यह स्त्री है, यह पुरुष है, यह अच्छा है, यह बुरा है, यह पापी है, यह पुण्यात्मा है, ऐसा किसी भी प्रकार का भेद विद्यमान नहीं है। वे अपने आप को जैसे हैं, वैसे ही प्रगट कर देते हैं। पर उस रूप में प्रदर्शित करने पर आलोचना भी सुननी पड़ती है। दक्ष ने ससुर होते हुए भी भगवान शंकर की यह कहकर आलोचना की कि तुम बड़े अमर्यादित हो। उन्होंने उस वस्तु को मर्यादा का नाम दिया। भगवान शिव अपने सहज रूप में विद्यमान हैं और दक्ष ने कहा कि तुम सभा में बिना वस्त्र के चले आए। इसका अर्थ है कि समाज की मर्यादा का तुम्हें रंच मात्र भी ध्यान नहीं है, उसे तुम महत्त्व नहीं देते, उसका पालन नहीं करते हो। तो दोनों ही पक्षों का अपना महत्त्व है और इसका अभिप्राय है कि यदि हम मर्यादा के लिए वस्त्र स्वीकार करते हैं, तो वह कल्याणकारी है। वह गीता के उपदेश के अनुकूल है -

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। (गीता ३/२१)

(क्रमशः)

जीवन-गति है जलधारा-सी

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

नल का पानी नाला पानी, या पर्वत का जल तूफानी ।
अचल अम्बु या धिरा सरोवर, कूप मधुर या मेघा पानी ।
पेय-अपेय या मीठा खारा, रूप-भेद सब जल-परिवारा ।

गतिहीन जल या गतिमय, सबका तय होना है लय ।

जीवन भी है जल जैसा, जमे या बहे, दुख कैसा !
धरती सोखे या रवि-कर, फिर बरसेगा शोक न कर ।

भूल-सुधार

अगस्त, २०२१ के अंक में प्रकाशित 'श्रीमद् भागवत और श्रीकृष्ण' नामक लेख को ग्वालियर निवासी डॉ. सुरेश चन्द्र शर्मा ने लिखा है। लेकिन त्रुटि से सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव के नाम से प्रकाशित हो गया था।

जनसेवा हेतु एक बच्ची का महान त्याग

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर



तमिलनाडु के मदुरई की रहनेवाली एम. नेत्रा को यूनाइटेड नेशन्स एसोसिएशन फॉर डेवलेपमेंट एंड पीस (UNADAP) के कार्यालय से एक फोन आया और उसे पूछा गया कि क्या वह UNADAP के लिए 'गुडविल एम्बेसेडर टू दि पुअर' बनने की इच्छुक है। नेत्रा के लिए यह एक बेहद सुखद एवं विस्मयकारी सूचना थी। आनन्द से अभिभूत नेत्रा ने माता-पिता के साथ विचार विमर्श करने के पश्चात् इस प्रस्ताव को स्वीकार किया।

१३ वर्षीय एम. नेत्रा मदुरई के मैलामडे सी. मोहन की पुत्री है। उसके पिता सैलुन संचालक हैं। उनका एक छोट-सा साधारण परिवार है। वर्ष २०१३ में नेत्रा के घर में चोरी हुई और उनके पास कुछ भी न बचा। यहाँ तक की पानी खरीदने के लिए भी रुपये नहीं थे। फिर उसके पिता ने सात साल तक कड़ी मेहनत करके अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार लाया। उसके पिता ने अपनी मेहनत के बल पर नेत्रा की शिक्षा तथा प्रशासनिक सेवा की पढ़ाई के लिए बचत खाते में पाँच लाख रुपये जमा किये थे। नेत्रा का उद्देश्य भारतीय प्रशासनिक सेवा की परीक्षा उत्तीर्ण करने की थी।

वर्तमान काल में पूरा विश्व कोरोना विश्वमहामारी की चपेट में है। इस विश्वमहामारी की रोकथाम के लिए हर राष्ट्र ने लाकडाउन को रोकथाम का प्राथमिक उपाय बताकर गम्भीरता से लागू किया। इसके कारण गरीब लोगों की आय बन्द हो गई और खाने-पीने का तथा आश्रय का अभाव हो गया। इस कठिन समय में लोगों की मदद करने के लिए कई लोग आगे आए। उनमें से तमिलनाडु के मदुरई की एम. नेत्रा भी एक है, जो लॉकडाउन में गरीब एवं जरूरतमन्दों की मदद के लिए आगे आई।

नेत्रा के लिए जनता की सेवा ही प्राथमिक है। उसके लिए उस धन का कोई प्रयोजन नहीं है, जो जरूरतमन्द और गरीब लोगों की मदद में काम न आए। स्वयं की, अपने परिवार की चिन्ता न करते हुए नेत्रा ने अपने पिता को प्रोत्साहित किया और लॉकडाउन के संकटकाल में गरीब और जरूरतमन्द लोगों के लगभग ६०० परिवार के लिए खान-पान की व्यवस्था और लोगों की सेवा हेतु बचत खाते में जमा पाँच लाख रुपये खर्च कर दिये, जबकि लाकडाउन के दौरान उसके पिता का सैलून २ महीने तक बन्द था तथा उस समय उनकी आय का कोई स्रोत भी नहीं था।

इस उत्कृष्ट योगदान के लिए एम. नेत्रा को UNADAP के लिए 'गुडविल एम्बेसेडर टू दि पुअर' नियुक्त किया गया है। इसके द्वारा नेत्रा को न्युयॉर्क और जिनेवा में संयुक्त राष्ट्र के सम्मेलनों और सिविल सोसाइटीज के मंचों पर बोलने का तथा विश्व के शिक्षाविदों, राजनेताओं और नागरिकों से वार्तालाप करने का अवसर मिला। इसके साथ उसे दूसरे लोगों को भी प्रोत्साहित कर उन्हें जरूरतमन्दों तक पहुँचाने का उत्तरदायित्व भी प्राप्त हुआ। इस प्रकार के अवसरों से प्राप्त अनुभवों से नेत्रा समाज के पिछड़े वर्गों की समस्याओं को विश्व के नेताओं के समक्ष प्रस्तुत करेंगी। भविष्य में वह जरूरतमन्द लोगों की समस्याओं का निराकरण कर पाने में



एम. नेत्रा अपने माता-पिता के साथ

सक्षम होगी। ये अनुभव उसे लोगों को समझने और समाज की भलीभाँति सेवा करने में सहायता करेंगे।

शेष भाग पृष्ठ ४७० पर

भारतीय धर्म में मनोनिग्रह तथा उसके उपादान

स्वामी गीतेशानन्द

संसार में मुख्य रूप से दो प्रकार के मतवाद हैं – आस्तिक धर्म या ईश्वरवादी धर्म और नास्तिक या अनीश्वरवादी धर्म। जो पंथ पारमार्थिक सत्ता पर विश्वास करते हैं, वे आस्तिक मतवाद हैं और जो नहीं करते, वे नास्तिक मतवाद हैं। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सांख्य अनीश्वरवादी हैं, हालाँकि योग ईश्वर के अस्तित्व को नकारता नहीं है, लेकिन सत्योपलब्धि के लिए ईश्वर की भूमिका इसमें न के बराबर है। दार्शनिक स्तर पर भले ही योग और बौद्ध दर्शन में थोड़ा मतभेद हो, लेकिन साधन स्तर पर दोनों में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

आध्यात्मिक सत्य को उपलब्ध करने के लिए मुख्य उपादान मन है। चाहे आस्तिक धर्म हों अथवा नास्तिक धर्म। मन के साधन की आवश्यकता सभी स्वीकार करते हैं। अज्ञान के घने आवरण को भेदकर सत्य अविष्कृत करने के लिए इस मन का तेल की धार के सदृश निर्विछिन्न ध्येय वस्तु पर एकाग्र होना आवश्यक है। एकाग्रता को पाने के लिए भिन्न-भिन्न मतवाद में पूर्वापर आचार्यों ने जिन उपादानों का निर्देश दिया है वे इस प्रकार हैं।

अभ्यास और वैराग्य

प्राचीन काल से ही इस मन के साधन के लिये दो प्रकार के उपाय स्वीकृत हुए हैं – अभ्यास और वैराग्य। किसी वस्तु या विषय पर मन को बार-बार लगाना अभ्यास है और मन की किसी विषय पर स्वाभाविक गति का निरोध वैराग्य है। ‘अभ्यास’ अपेक्षाकृत सरल है, क्योंकि अभ्यास हमारी वर्तमान इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है। वैराग्य कठिन है। केवल इच्छाशक्ति होने से ही वैराग्य का उदय नहीं हो सकता, क्योंकि यह अवचेतन मन की संस्कार राशि पर निर्भर करता है। अभ्यास से कालान्तर में वैराग्य हो सकता है, लेकिन यह कोई जरुरी नहीं, क्योंकि वैराग्य फलरूप है। संचित पुण्यकर्म, शुभ संस्कार राशि अथवा ईश्वर-कृपा से ही वैराग्य का उदय होता है। वैराग्य ही वैराग्य में वृद्धि का हेतु होता है, क्योंकि स्वल्प वैराग्य भी साधक को अभ्यास के लिए प्रेरित करता है।

षडदर्शनों में योग, बौद्ध दर्शन तथा जैन दर्शन ‘अभ्यास’ पर अधिक बल देते हैं। इनमें जैन दर्शन कायिक

अभ्यास पर बल देते हैं तथा बौद्ध और योग मानसिक अभ्यास पर। जैन शरीर को साधकर मन को स्थिर करते हैं। जैन सम्प्रदाय में कृच्छ साधन की परम्परा है। हमें आज के युग में वह कितना ही अप्रयोजनीय लगे, लेकिन हम शरीर से इतने अधिक आसक्त हैं कि केवल कुछ पुस्तकें पढ़ लेने से, कुछ प्रवचन सुन लेने से अथवा स्वल्प अभ्यास से इस देह-बोध ('मैं शरीर हूँ' ऐसा भान) में कुछ भी न्यूनता नहीं आती। चेतना का केन्द्र जब तक देह के इर्द-गिर्द रहता है, तब तक कोई भी आध्यात्मिक उपलब्धि असम्भव है। अतः जैन साधक शरीर को साधकर मन को वशीभूत करते हैं और इस देह-बोध को दूर करने का प्रयास करते हैं। शरीर और मन चूँकि परस्पर सम्बन्धित हैं, अतः स्थूल शरीर को पकड़कर, जो कि सहज ग्राह्य है, सूक्ष्म मन को साधा जा सकता है। बौद्ध और योग के साधक सीधे मन को ही ध्यान का विषय बनाते हैं। मन की क्रिया-विधि को समझकर उठनेवाली वृत्तियों का निरोध करते हैं। जैन और बौद्ध चूँकि पारमार्थिक किसी सत्ता पर नहीं विश्वास करते, अतः वैराग्य को प्रथम ही स्वीकार करना, इनके लिए कठिन है, सांसारिक सुख-भोग को छोड़ने हेतु कुछ तो हेतु होना चाहिए। ‘सर्व दुखमयं जगत्’, दुःख-निवृत्ति केवल इस सिद्धान्त पर वैराग्य का होना असम्भव-सा ही है। कुछ अभ्यास के बाद मन की क्रिया-विधि को समझने के बाद संसार के प्रपञ्च की अवगति से भोग तुष्णा का स्वतः ही अवसान हो जाता है। ‘उद्धरेदात्मनात्मानं’ इन दर्शनों में साधक को स्वयं पर ही निर्भर रहना पड़ता है, जैसाकि भगवान बुद्ध ने कहा ‘आत्मदीपो भव’। योगदर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध का फल ‘तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽप्यस्थानम्’ कहा गया है। लेकिन स्वरूप कैसा है, इस विषय में कुछ भी इंगित नहीं किया गया



है, अतः योग भी स्वयं के अभ्यास पर ही निर्भर करता है। पहले से ही वैराग्य लेकर साधना में प्रेरित होने की सम्भावना योग में भी नगण्य ही है।

वेदान्त में वैराग्य अधिक महत्वपूर्ण है। कुछ वैराग्य न होने से वेदान्त का अधिकारी नहीं हुआ जा सकता। साधन चतुष्टय, (नित्यानित्य वस्तु विवेक, इहामुत्र फलभोग विराग, शमदमादि सम्पत्ति और मुमुक्षुत्व) इन चारों में वैराग्य ही प्रधानतः ज्ञलकता है। अद्वैत वेदान्त के आचार्यों ने तो अल्प वैराग्य से साधन में अग्रसर होने की तुलना, मगर पर बैठकर नदी पार होने से की है। वेदान्त के आचार्यों ने ब्रह्मज्ञान के फल बताये हैं – आत्मनित्य दुख-निवृत्ति, परमानन्द प्राप्ति। वेदान्त के आचार्यों ने दुख-निवृत्ति के बौद्ध सिद्धान्त में ‘परमानन्द प्राप्ति’ एक और सकारात्मक वस्तु जोड़ दी। यह सकारात्मक वस्तु ही साधक में वैराग्य के लिए आवश्यक प्रेरणा प्रदान करती है। भला कौन होगा, जो अनन्त आनन्द का उपभोग नहीं करना चाहेगा। अतः अद्वैत वेदान्त वैराग्य-प्रधान है।

अनुराग और वैराग्य

वेदान्त के भक्ति सम्प्रदायों ने भी वैराग्य पर ही अधिक जोर दिया है, लेकिन यह वैराग्य अद्वैत वेदान्त के वैराग्य से कुछ सहज और सरल है। इनके अनुसार ईश्वर पर अनुराग होने से विषयासकि स्वतः ही क्षीण हो जाती है। जिस प्रकार एक रेखा के सामने बड़ी रेखा खांचने से पूर्व वाली रेखा छोटी हो जाती है, उसी प्रकार भक्ति मार्ग में वैराग्य के लिये अलग से प्रयत्न नहीं करना पड़ता। जैसाकि श्रीरामकृष्ण कहते हैं, अनुराग रूपी बाघ काम क्रोध आदि रिपुओं को खा जाता है। ईश्वर पर यदि प्रेम हो जाय, तो उसका आकर्षण इतना अधिक होता है कि सांसारिक भोग उसके समक्ष तृणवत् जान पड़ते हैं। ऐसे साधकों को दैवी सहायता मिलने से उनका मार्ग बहुत सुगम हो जाता है। प्रेम होने से शरणागति का भाव आता है। श्रीरामकृष्ण इसकी तुलना बिल्ली के बच्चे से करते हुए कहते हैं कि बिल्ली के बच्चे को कोई चिन्ता नहीं है, उसकी माँ उसे चाहे जहाँ भी रखें, वह माँ पर निर्भर रहता है। यह अनुराग स्वयं में साधन भी है और साध्य भी है। तीव्र अनुराग ही प्रेम है। यह प्रेम सर्वोपरि है और कई आचार्य तो ज्ञान को भी इस प्रेम से इतर मानते हैं।

विश्वास की भूमिका

मन के साधन में और एक उपादान है विश्वास। श्रीरामकृष्ण परमहंस ने इस उपादान की महत्ता जिस प्रकार उजागर की है वह अभूतपूर्व है। उनके अनुसार ठीक-ठीक विश्वास होने से इसी क्षण वस्तु-लाभ होगा। विश्वास और ज्ञान में गहरा सम्बन्ध है। जितना विश्वास बढ़ेगा, उतना ही ज्ञान में भी वृद्धि होगी। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

(गीता ९/३०)

दुराचारी होने से भी यदि कोई मुझको अनन्य भाव से भजता है, तो उसे साधु ही समझा जाना चाहिए। कालान्तर में वह मुझको प्राप्त कर ही ले गा। विश्वास में इतनी सामर्थ्य है कि वह साधक को बेचाल नहीं होने देता। आध्यात्मिक परम्परा में दर्जनों ऐसे साधक हैं, जो विश्वास के बल पर ही सिद्धावस्था को प्राप्त हुए हैं।

आत्मविश्वास और विश्वास

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ‘प्राचीन धर्म कहता है, जिसे ईश्वर पर विश्वास नहीं, वह नास्तिक, लेकिन नया धर्म कहता है कि जिसे स्वयं पर विश्वास नहीं, वह नास्तिक है’, यह उक्ति अति महत्वपूर्ण है। ‘संशयात्मा विनश्यति’ यह संशय साधक का सबसे बड़ा बाधक है। इस संशय के मूल में ही है आत्मविश्वास का ह्लास। न केवल आध्यात्मिक क्षेत्र, बल्कि यह आत्मविश्वास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ही महत्वपूर्ण है। एक सफल और असफल व्यक्ति में अन्तर इस आत्मविश्वास का अन्तर ही है। अतः बिना आत्मविश्वास के आध्यात्मिक जीवन के लिए उपरोक्त विश्वास को प्राप्त नहीं किया जा सकता। अवतार पुरुष श्रीरामकृष्ण कहते हैं, इस प्रकार का आत्मविश्वास चाहिए ‘मैंने माँ का नाम लिया है, मुझे क्या पाप स्पर्श कर सकते हैं?’ ऐसा आत्मविश्वास आत्मसंदर्भ होकर साधक अमृत फल का अधिकारी हो सकता है। ○○○

मन सभी संवेदनाओं का अग्रगामी है। इस भौतिक विश्व के समस्त तत्त्वों की अपेक्षा मन सबसे सूक्ष्म है। समस्त विषयभूत चेतना मन में ही उत्पन्न होती है। यदि कोई शुद्ध मन से बोलता या काम करता है, तो आनन्द उसकी छाया के समान उसका अनुसरण करती है।

— भगवान बुद्ध

प्रश्नोपनिषद् (१७)

श्रीशंकराचार्य



(सनातन वैदिक धर्म के ज्ञानकाण्ड को उपनिषद् कहते हैं। हजारों वर्ष पूर्व भारत में जीव-जगत् तथा उससे सम्बद्ध गम्भीर विषयों पर प्रश्न उठाकर उनकी जो मीमांसा की गयी थी, ये उन्हीं के संकलन हैं। वैदिक धर्म की पुनः स्थापना हेतु आचार्य ने इन पर सहज-सरस भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को प्रतिपादित किया था। प्रश्नोपनिषद् पर लिखे उनके भाष्य का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी द्वारा किया गया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। –सं.)

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।

त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥२/९॥

अन्वयार्थ – प्राण (हे प्राण), त्वम् (तुम) इन्द्र (इन्द्र) तेजसा (अपने तेज से) रुद्रः (रुद्र) असि (हो), (तुम) परिरक्षिता (हर और से रक्षक हो), त्वम् (तुम) सूर्यः (सूर्य हो), अन्तरिक्षे (उदय-अस्त के रूप में) (अन्तरिक्ष में) चरसि (विचरण करते हो), त्वम् (तुम) ज्योतिषाम् (नक्षत्र आदि) ज्योतिपुंजों के पतिः (स्वामी हो)।

भावार्थ – हे प्राण, तुम इन्द्र हो, (अपने) तेज से रुद्र हो, (तुम) हर और से रक्षक हो, तुम सूर्य हो, (उदय-अस्त के रूप में) अन्तरिक्ष में विचरण करते हो, तुम (नक्षत्र आदि) ज्योतिपुंजों के स्वामी हो।

भाष्य – इन्द्रः परमेश्वरः त्वं हे प्राण तेजसा वीर्येण रुद्रः असि संहरन् जगत्। स्थितौ च परि समन्तात् रक्षिता पालयिता परिरक्षिता त्वमेव जगतः सौम्येन रूपेण। त्वम् अन्तरिक्षे अजस्तं चरसि उदय-अस्तमयाभ्यां सूर्यः त्वम् एव च सर्वेषां ज्योतिषां पतिः॥

भाष्यार्थ – हे प्राण, अपने तेज या वीरता के कारण तुम रुद्र होकर जगत् का संहार करनेवाले हो। जगत् की स्थिति के समय तुम्हीं (अपने) सौम्य रूप से उसके परिरक्षक तथा पालक भी हो। तुम उदय-अस्त होनेवाले सूर्य के रूप में निरन्तर अन्तरिक्ष में विचरण करते हो और तुम्हीं समस्त ज्योतिषान वस्तुओं के स्वामी हो॥२/९॥

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः। आनन्द-रूपास्तिष्ठन्ति कामायान्न भविष्यति॥२/१०॥

अन्वयार्थ – यदा (जब) त्वम् (तुम) अभिवर्षसि (मेघ के रूप में बरसते हो), अथ (तब) प्राण (हे प्राण) ते (तुम्हारी) इमाः (ये सभी) प्रजाः (सन्तानें अर्थात् जीवगण)

कामाय (इच्छानुसार) अन्नम् (अन्न) भविष्यति (होगा) इति (यह मानकर) आनन्दरूपाः (आनन्दपूर्वक) तिष्ठन्ति (निवास करते हैं)।

भावार्थ – जब तुम मेघ के रूप में बरसते हो, तब हे प्राण, तुम्हारी ये सभी सन्तानें अर्थात् जीवगण – इच्छानुसार अन्न होगा, यह मानकर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं।

भाष्य – यदा पर्जन्यो भूत्वा अभिवर्षसि त्वम् अथ तदा अन्नं प्राप्य इमाः प्रजाः प्राणते प्राणचेष्टां कुर्वन्ति इत्यर्थः। अथवा प्राण ते तव इमाः प्रजाः स्वात्मभूताः त्वदन्त्र-संवर्धिताः त्वद्-अभिवर्षण-दर्शन-मात्रेण च आनन्दरूपाः सुखं प्राप्ता इव सत्यः तिष्ठन्ति कामाय इच्छातः अन्नम् भविष्यति इति एवम् अभिप्रायः॥

भाष्यार्थ – जब तुम मेघ होकर बरसते हो, तभी समस्त प्राणी अन्न को पाकर जीवित रहते हैं, अर्थात् जीवन-धारण के लिये प्रयास करते हैं। अथवा हे प्राण, तुम्हारे ये प्राणी, जो तुम्हारे ही आत्म-स्वरूप हैं और तुमसे प्राप्त अन्न द्वारा ही पृष्ठ हुए हैं, तुम्हारी वर्षा के दर्शन मात्र से ही, मानो सचमुच ही बड़ा सुख मिल जाता है। (क्योंकि वे) इस भाव में स्थित हो जाते हैं कि (अब) अपनी इच्छानुसार अन्न होगा, यही अभिप्राय है॥२/१०॥ (क्रमशः)

हे दुर्गामाता ! तू करूणा की सागर है। मैं जब संकट में होता हूँ तभी तेरा स्मरण करता हूँ। इसको कपटा मत मानना। स्वभावतः भूख-प्यास से पीड़ित होने पर ही बालक को माँ की याद आती है।

हे माँ ! मैं तुझसे मुक्ति नहीं चाहता; धन-सम्पत्ति, सुख या ज्ञान भी नहीं चाहता। मेरी केवल यह प्रार्थना है कि जब तक शरीर में प्राण रहे, मैं तेरा नाम-स्मरण करता रहूँ। — श्रीशंकराचार्य

युवा प्रबन्धकों हेतु गीता

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छत्तीसगढ़)
(अनुवाद - प्रियंका ठाकुर, रायपुर)

संसार के सभी प्राणियों में मनुष्य ही सर्वोत्तम है। संसार के सभी जीवों में चेतना का परिमाण अलग-अलग रखा गया है। चेतना जीवन का एक लक्षण है। हम हिन्दू यह मानते हैं कि हमारा जीवन विभिन्न कई योनियों में बँटा हुआ है। हमारे ग्रन्थ उसे देव, गन्धर्व, पितृ, राक्षस, भूत-प्रेत आदि योनि कहते हैं। इन सबका मानव-शरीर नहीं होता, लेकिन चेतना होती है और विभिन्न प्रकार की सत्ता होती है, सूक्ष्म शरीर होता है। लेकिन हमारे ग्रन्थ, साधु और संत बताते हैं कि जीवित मानव-शरीर के अलावा अन्य मोक्ष-प्राप्ति में असमर्थ होते हैं।

मोक्ष - हिन्दू शब्दावली में एक व्यष्टि प्राणी को जीव कहते हैं। जब मनुष्य जन्म लेता है, तो वह अपने कर्मफल से जीवन व्यतीत करता है और कुछ वर्ष बाद मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मृत्यु को प्राप्त करते समय अगर उस मनुष्य की कोई इच्छा अधूरी रह जाती है, तो वह मनुष्य पुनः उसी योनि में या फिर किसी और योनि में जन्म लेकर अपनी इच्छा पूरी करता है। वह अलग-अलग योनियों में, यहाँ तक कभी जानवर के रूप में भी जन्म लेकर अपनी इच्छाओं को पूर्ण करता है और कुछ वर्ष बाद वह पुनः मर जाता है और फिर से जन्म लेता है। यह चक्र लगभग अनन्त काल के लिए चलता ही रहता है।

जब हम मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं, तब हमें ज्ञात होता है कि किसी भी योनि में सम्पूर्ण सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। जब यह बोध होता है, तब वह सोचता है कि क्या अपनी इच्छाओं की पूर्ति से भी बेहतर कुछ हो सकता है, जो हमें सम्पूर्ण सन्तुष्टि और शाश्वत सुख, आनन्द प्राप्त करा सके।



यही जिज्ञासा और प्रश्न आध्यात्मिक जीवन का प्रारम्भ है। दूसरे शब्दों में पूर्णतः सुख और शान्ति की इच्छा ही मनुष्य को सुख और शान्ति की खोज के लिए प्रेरित करती है। सभी महान् धर्मों के ग्रंथ में विभिन्न मनुष्यों की क्षमता और स्वभाव के अनुरूप मार्ग-दर्शन दिए गए हैं। प्राचीन समय से ही जिज्ञासु लोगों ने इन उपदेशों का चिन्तन, मनन, निदिध्यासन और साधना की।

भगवत् गीता में मनुष्य की धारणा

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, “स्वाधीनता विकास की पहली शर्त है।” अगर हम स्वयं का विश्लेषण करें, तो हमें ज्ञात होगा कि कोई भी बन्धन या परतन्त्रता हमें दुखी करती है। हम सभी को स्वतन्त्रता चाहिए। परं जब हम अपने व्यक्तित्व का विश्लेषण करेंगे, तब हम पायेंगे कि हमारा शरीर बहुत सीमित है। हम अपने शरीर और शक्ति से बहुत थोड़ा ही कर सकते हैं। एक उदाहरण लें, अगर हम कार से कहीं जा रहे हैं और भू-स्खलन के कारण एक बड़ा पत्थर हमारे गास्टे में आ गया और हमारा मार्ग अवरुद्ध हो गया। इस संसार का कोई भी मनुष्य अपने बल से उसे हटा नहीं सकता। यह हमारे शरीर की पंगुता और सीमा को दर्शाता है।

निश्चित रूप से मनुष्य ने अपने ज्ञान से बड़ी मशीनों को बनाया है, जिसकी मदद से वह बड़े-से-बड़े पत्थर को आसानी से उठाकर फेंक सकता है। लेकिन यह मशीन की क्षमता है, मनुष्य की नहीं। मन और बुद्धि की भी अपनी एक क्षमता है। ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिसमें मन और बुद्धि भी विजय नहीं पा सकती। बुद्धि के चिन्तन की कोई

सीमा नहीं है, लेकिन वह भी कुछ ही काम कर सकती है। जैसाकि मनुष्य के पास बुद्धि और मेधा तो है, पर वह इससे प्रकाश से अधिक गति नहीं उत्पन्न कर सकता। किसी भी प्रकार से वह तारों तक नहीं पहुँच सकता, जो धरती कई हजार प्रकाश वर्ष दूर है। मनुष्य वहाँ पहुँचने की कल्पना कर सकता है, लेकिन उसे कार्यान्वित नहीं कर सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य का शरीर, मन और बुद्धि सीमित और विनाशी हैं। लेकिन गीता कहती है –

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुर्मर्हसि॥।।
(भगवद्गीता २/३०)

आत्मा को कोई नष्ट नहीं कर सकता, क्योंकि वह सनातन है और उसकी कोई सीमा नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा –

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुर्मर्हति॥ २/१७॥

यह ब्रह्माण्ड जिससे व्याप्त है, वह अविनाशी है। कोई भी उसका नाश नहीं कर सकता।

न जायते म्रियते वा कदाचि-
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो–

न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ २/२०॥

आत्मा न कभी जन्म लेती है, न कभी मरती है और न ऐसा है कि एक बार होकर फिर नहीं होती। जन्मरहित, मृत्युरहित शाश्वत सनातन यह जीवात्मा शरीर के मरने पर नष्ट नहीं होती।

यह स्पष्ट है कि मनुष्य शाश्वत प्राणी है। वह न कभी जन्मा है, न कभी मृत्यु को प्राप्त होगा, लेकिन मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण स्वयं को शरीर मानने लगता है, जिससे वह स्वयं को बाँध लेता है और अनन्त दुःखों को भोगता रहता है।

इस उत्तर से क्या लाभ मिलता है?

जब हम यह मान लेते हैं कि हम अजेय और सनातन हैं, तब हम किसी भी चुनौती को स्वीकार करने से नहीं डरते।

कर्म-सिद्धान्त

हमारे समक्ष जो संसार है, वह क्षणिक है, परिवर्तनशील

है। संसार का यही स्वभाव है कि वह निरन्तर बदल रहा है। यह परिवर्तन हमारे जीवन में सुख-दुख, हार-जीत, लाभ-हानि लाता है।

जब हम अपने सनातन स्वभाव को भुला देते हैं, तब हम सुख-दुख, लाभ-हानि इन सभी प्रकार की समस्याओं में उलझते चले जाते हैं।

शान्ति-धैर्य ही सफलता का मूल मंत्र है।

प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में किसी न किसी प्रकार का कार्य करना होता है। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक मनुष्य पर किसी न किसी कार्य का उत्तरदायित्व होता है। गीता में लिखा है कि –

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ ३/५॥

कोई भी जीव बिना किसी कार्य के क्षणभर भी नहीं रह सकता। प्रकृति के आवेगों के कारण प्रत्येक जीव कोई-न-कोई कार्य करने को विवश है। गीता में आगे लिखा है –

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥ ३/८॥

प्रत्येक जीव को प्रकृति द्वारा दिए गए कार्यों को करना पड़ता है। यहाँ तक कि बिना कार्य किए हमारे शरीर का संरक्षण भी नहीं है।

आप सभी मित्र जो प्रबन्धक बनने जा रहे हैं, आपको अपने कर्मों पर उत्तरदायित्व लेना होगा। किसी भी व्यापार या उद्योग की सफलता उत्तरदायित्वों को ठीक से पूर्ण करने पर निर्भर होगी। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं – “तुम को सदा क्रिया-प्रतिक्रिया करनी चाहिए।”

गीता में बिना प्रतिक्रिया के कार्य करने का रहस्य बताया गया है। अर्थात् हमें परिस्थिति अनुसार कार्य करना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कहा था –

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥ २/३८॥

– सुख-दुख, लाभ-हानि और जय-पराजय को समान समझकर उसके उपरान्त युद्ध के लिए तैयार हो, इस प्रकार करने से तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

इसका अर्थ है कि किसी भी कार्य हेतु प्रयास करने से पहले हमें सबसे पहले अपने मन को स्थिर और वश में

कर लेना चाहिए। अगर हमें अपने मन पर संयम नहीं है, संतुलन नहीं है, तो स्वार्थपरता और अच्छी-बुरी भावनाएँ, हमें अनुचित लाभ के लिये हमारे विचार को प्रभावित कर सकती हैं और यह भी सम्भव है कि बुद्धिमत्ता के बावजूद हम स्वार्थपरता एवं अवांछनीय भावनाओं में बह कर अपनी पूरी परियोजना को नष्ट कर सकते हैं। इसलिए अपनी परियोजना को आरम्भ करने के पहले प्रबन्धक को पहले उसे अपने विवेक तथा बुद्धि को वश में करना चाहिए।

अब मनुष्य को अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य पर विचार करने की आवश्यकता है। केवल धन एकत्र करना तथा लाभ कमाना मनुष्य के जीवन का परम उद्देश्य नहीं हो सकता। हमें जीवन और जीविका में अन्तर करना आना चाहिए। लाभ तथा धन-अर्जन के हमारे सभी प्रयास जीविका के साधन हैं। ये हमारे जीवन में आराम और संतुष्टि दे सकते हैं, किन्तु यदि हम अपनी सम्पूर्ण शक्ति, ऊर्जा और क्षमता लाभ तथा अधिक से अधिक सम्पत्ति अर्जन में लगा दें, तो हो सकता है कि हमें अत्यधिक लाभ तथा अथाह सम्पत्ति अर्जन में सफलता प्राप्त हो, किन्तु हमें कभी भी अपने जीवन में सान्त्वना और पूर्णता प्राप्त नहीं होगी। इसका अर्थ यह है कि हमारे जीवन का मूल उद्देश्य ही पराजित हो जाएगा और जीवन के अन्त में केवल पश्चात्ताप ही रह जाएगा।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते। १६/२२।।

- परमेश्वर के प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुख से भी विचलित नहीं होता है।

यही मानव जीवन का लक्ष्य है, जो गीता आज्ञा देती है। जीवन के किसी क्षेत्र में चाहे वह व्यवसाय, उद्योग या कार्य क्षेत्र जो कुछ भी हो, हम लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। गीता कहती है -

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धं लभते नरः।

स्वकर्मनिरतः सिद्धं यथा विन्दति तच्छृणु। १८/४५।।

इस अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य भगवत् प्राप्ति रूप परमसिद्धि को प्राप्त होता है, उस विधि को तू मेरे से सुन -

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

स्वकर्मणा तमभ्यर्थ्य सिद्धं विन्दति मानवः। १८/४६।।

जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सर्वजगत् व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजा कर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।

इसके बाद एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रश्न यह आता है कि जीवन के किसी भी क्षेत्र में हमें कार्य करना होगा और हम जब भी कोई कार्य करते हैं, तो अज्ञानता और सांसारिक प्रवृत्ति की अनभिज्ञता के कारण हम यह सोचते हैं कि हमें अपने कार्य का परिणाम या फल त्वरित प्राप्त हो जाए। सभी व्यावहारिक कार्यों के पीछे, फल-प्राप्ति ही हमारा प्रमुख उद्देश्य रह जाता है। हम यह भूल जाते हैं कि किसी भी कार्य का फल हमारे हाथों में नहीं है। इस ब्रह्माण्ड का एक परम नियंत्रक है, जो इस ब्रह्माण्ड के किसी भी कार्य के परिणाम को निर्धारित तथा निश्चित करता है। गीता में कहा गया है -

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि। १२/४७।।

- हमें केवल कर्म करने का ही अधिकार है, उसके फल में नहीं। न तो हमारा उद्देश्य कर्मफल-प्राप्ति हो और न ही कर्म न करने में आसक्ति ही हो।

इसका अर्थ यह है कि हमें अपनी पूरी ऊर्जा तथा शक्ति हाथ में आए हुए कर्म में लगा देनी चाहिए और उसके फल प्राप्ति के लिए चिन्तित नहीं होना चाहिए।

यहाँ एक अचम्भित करनेवाला प्रश्न आता है कि यदि हम अपने कर्मों के फल की इच्छा न करें, तो हमें कर्म करने की प्रेरणा कहाँ से आएगी? हम कर्म क्यों करें? हमने यह भी देखा कि गीता हमें निष्क्रिय होने को भी नहीं कहतीं। हमारा कर्तव्य यह है कि हम अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा तथा मन अपने हाथ में लिए हुए कार्य में लगाएँ और सर्वश्रेष्ठ रूप से उसे सम्पन्न करें। जब हम अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा-शक्ति और मन को अपने कार्य में लगा देते हैं, तो वह उत्कृष्ट और पूर्ण हो जाता है, यही प्रकृति का नियम है। यदि साधन उत्तम तथा पूर्ण है, तो शिखर अपने आप ही प्राप्त हो जाता है।

यदि हम कर्मफल की ओर आकर्षित होते हैं, तो हमारा ध्यान विभाजित हो जायेगा और इससे कार्य-कुशलता तथा

वरिष्ठ साधुओं की स्मृतियाँ (३)

स्वामी ब्रह्मेशानन्द रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

(स्वामी ब्रह्मेशानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। वे लुसाका और चण्डीगढ़ के अध्यक्ष और वेदान्त केसरी के सम्पादक थे। वे कई वरिष्ठ संन्यासियों के सान्निध्य में आये और उनकी मधुर स्मृतियों को लिपिबद्ध किया है। इसका हिन्दी अनुवाद श्री रामकुमार गौड़, वाराणसी ने किया है। – सं.)

एक बार बैंगलुरु में स्वामी यतीश्वरानन्द जी आश्रम-प्रांगण में ही दैनिक संध्या-भ्रमण हेतु निकले। स्वामी अपर्णानन्द तथा मेरे सहित कई लोग भी साथ आ गए। भ्रमण के अन्त में वे तथा हमलोग हरी घास के लॉन के एक रास्ते पर नंगे पैर (जूते उतारकर) खड़े होते थे। वहाँ १०-१५ मिनट खड़े रहने के बाद वे जूते पहनने आगे बढ़े। स्वामी अपर्णानन्द, जो स्वयं एक वरिष्ठ साधु थे, ने झुककर उनके जूते उठाकर उनके सामने रखना चाहा। किन्तु स्वामी यतीश्वरानन्द जी ने अपनी छड़ी को जूतों और स्वामी अपर्णानन्द जी के बीच में रखकर, उसकी सहायता से उन्हें वैसा करने से रोक दिया। वह एक दिव्य दृश्य था – दो महापुरुषों का आपसी प्रेम और आदर।

स्वामी अपर्णानन्द जी ने भी स्वामी यतीश्वरानन्द जी के बारे में मुझे यह बात बताई थी। तब वे चेन्नई मठ में स्वामी यतीश्वरानन्द जी के कमरे के बगल वाले कमरे में ठहरे हुए थे। उन्होंने बताया कि स्वामी यतीश्वरानन्द जी रात के भोजन के समय रसोईघर में जाकर एक छोटे कप में अल्प मात्रा में भोजन लाया करते थे। वे अपने कमरे में उसे ग्रहण करके ९-०० बजे सो जाते। मध्यरात्रि के लगभग १२-०० बजे स्वामी अपर्णानन्द स्वामी यतीश्वरानन्द जी के कमरे में अलार्म बजने की आवाज सुनते और स्वामी यतीश्वरानन्द जी उसे बन्द करते थे। तदुपरान्त स्वामी यतीश्वरानन्द जी उठकर ध्यान में बैठते और मंगल-आरती तक ध्यान करते। वे मंगल-आरती में जाते और पुनः नाश्ते के समय तक ध्यान में बैठते।



स्वामी यतीश्वरानन्द महाराज के पत्र

२४ अगस्त, १९६३

प्रिय अशोक,

तुम्हारा ४ अगस्त का पत्र पाकर तथा यह जानकर कि तुम शरीर और मन से स्वस्थ और प्रसन्न हो, मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ।

यह अच्छी सूचना है कि तुमने एम.डी. की थिसिस पूरी कर ली है। तुम्हारी परीक्षा में अभी काफी देरी है और मैं समझता हूँ कि इस बीच तुम उसमें आवश्यकतानुसार सुधार कर सकोगे। ध्यानपूर्वक समझदारी से नियमित रूप से अपनी पढ़ाई करना, तुम्हारा मुख्य कार्य है।

हाँ, एम.डी. की परीक्षा अवश्य कठिन है, पर मुझे आशा है कि तुम उस परीक्षा का सामना अच्छी तरह कर सकोगे तथा उसमें योग्यता पूर्वक सफल होओगे। क्या तुमने मेडिसिन को अपने विशेष विषय के रूप में चुना है?

जहाँ तक साधना का प्रश्न है, उसे नियमित रूप से करना, भले वह थोड़े समय के लिये ही क्यों न हो। अन्य समय

जब समय मिले, किसी मंत्र या श्लोक या किसी सरल प्रार्थना या भजन, जो तुम्हें अच्छा लगे, उसकी सहायता से परमात्मा का स्मरण-मनन बनाये रखने का प्रयत्न करना। इससे धीरे-धीरे तुममें आन्तरिक रूपान्तरण-परिवर्तन होगा, जो आध्यात्मिक प्रगति के लिये आवश्यक है। परमात्मा 'सच्चिदानन्द' हैं। तुम जितना उनका चिन्तन करोगे, उतना ही उनकी दिव्य सत्ता, प्रेम और आनन्द को आत्मसात् करोगे।

तुमने एक बहुत समीचीन प्रश्न किया है – "साधन-पथ पर चलनेवाले सभी व्यक्तियों को अकेलापन लगता है?"

यह साधना के प्रारम्भ में हो सकता है, जब साधक अपने संसारिक सम्बन्धों और वस्तुओं को त्यागने का नकारात्मक प्रयत्न करता है। लेकिन वास्तविक त्याग में निषेधात्मक दृष्टिकोण के साथ परमात्मा तथा उनकी सभी अभिव्यक्तियों के प्रति प्रेम का सकारात्मक भाव भी होता है।

महत्वपूर्ण बात है आसक्ति का त्याग और सभी प्रकार के प्रेम का आध्यात्मीकरण। हमारे भगवत् प्रेम के गहरे होने पर तथा अपने सभी प्रेमों को भगवत् प्रेम के साथ जोड़ने पर ऐसा करना सम्भव हो जाता है।

मैं एक दृष्टान्त देता हूँ – पहले एक बुद्बुदा सागर को भूलकर दूसरे बुद्बुदों से प्रेम करता था। पर अब आध्यात्मिक चेतना के उदय होने पर बुद्बुदा सागर के साथ अपना एकात्म स्थापित कर लेता है और फिर सागर के माध्यम से दूसरे बुद्बुदों से सम्बन्धित हो जाता है।

ध्यान के बाद सर्वव्यापी परमात्मा की सत्ता का स्मरण करना अच्छा है, जो हममें तथा अन्य सभी प्राणियों में विद्यमान है। जितनी मात्रा में हम इस एकत्व का अनुभव करेंगे, उतनी ही मात्रा में हममें, सर्वप्राणियों में अभिव्यक्त हो रहे परमात्मा को, उसे देखने और प्रेम करने की हमें प्रेरणा होगी।

हमारे मार्गदर्शन के रूप में स्वामी विवेकानन्द ने हमें ‘आत्मनो मोक्षार्थं जगद्विताय च’ का आदर्श प्रदान किया है। इसका अर्थ है : ‘शिव ज्ञान से जीव सेवा’ अर्थात् सभी में परमात्मा की सेवा करना।’

क्या तुमने ‘सखा के प्रति’ कविता पढ़ी है? वह कविता इस प्रकार समाप्त होती है –

ब्रह्म और परमाणु कीट तक, सब भूतों का है आधार।
एक प्रेममय प्रिय इन सबके चरणों में दो तन-मन वार॥

बहुरूपों से खड़े तुम्हारे आगे और कहाँ है ईश?

व्यर्थ खोज यह जीव-प्रेम की ही सेवा पाते जगदीश॥

यह ठीक है कि आजकल तुम आश्रम में रह रहे हो, पर खाना घर पर ही खाना। तुम इकलौता पुत्र होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि तुम्हारे माता-पिता यह अपेक्षा करते हैं कि तुम उनके साथ रहो। यह अच्छा है कि अप्रसन्न होते हुए भी वे अविवाहित रहकर तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने में आपत्ति नहीं करते।

अगर तुम पूर्ण संन्यास का जीवन स्वीकार कर अन्यत्र न चले जाओ, तो वे भविष्य में सम्भवतः आश्रम में रहने की अनुमति दे दें। पर यह अभी की समस्या नहीं है। आशा है, वह समय आने पर अपने आप सुलझ जायेगी।

मेरा दिल्ली जाने का कार्यक्रम निश्चित होने पर मैं मद्रास से वहाँ सीधे हवाई मार्ग से जाऊँगा। अतः भोपाल से होकर जाने और इन्दौर जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि सब ठीक-ठाक हुआ, तो दिल्ली से बैंगलोर जाते समय रास्ते में हवाई मार्ग से जाकर हैदराबाद में कुछ दिन ठहर सकता हूँ। यदि तुम वहाँ आकर कुछ दिन स्वामी सत्स्वरूपानन्द और मेरे साथ बिता सको, तो अच्छा होगा। तब बातचीत के लिये मेरे पास बहुत समय होगा और तुम्हारे मन में उठ रहे प्रश्नों पर चर्चा हो सकेगी।

मैं उम्र के अनुसार ठीक ही हूँ। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करो और अपने मित्रों को भी दो।

तुम सभी मेरे मन तथा प्रार्थना में हो।

भगवदाश्रित
स्वामी यतीश्वरानन्द

बैंगलोर

०९-०५-१९६४

प्रिय अशोक,

तुम्हारा ४ मई का पत्र पाकर तथा यह जानकर कि तुम और रवि बैंगलोर आना और आश्रम में कुछ दिनों के लिये रहना चाहते हो, प्रसन्नता हुई। तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारे यहाँ पहुँचने की निश्चित तारीख और समय सूचित करना।

तुम्हारे २०-१०-६३, ५-२-६४ तथा १९-४-६४ के पत्र भी प्राप्त हुए थे। कई कार्यों में व्यस्त होने के कारण और बाद में अस्वस्था के कारण, खेद है कि मैं पहले उनके उत्तर न दे सका। अब जब तुम यहाँ आ रहे हो, तो व्यक्तिगत रूप से तुम्हारे द्वारा उठाये गए विषयों पर तुमसे चर्चा हो जाएगी।

यह सत्य नहीं है कि डॉक्टरों ने मुझे मिठाईयाँ खाने से मना किया है। बल्कि मैं स्वयं सावधान हूँ और बहुत कम लेता हूँ। तुम लाना चाहो, तो ले आना, मैं उसमें से थोड़ी अवश्य लूँगा।

उत्तराखण्ड की वैष्णवी माता दुनागिरी

मोहनसिंह मनराल, अलमोड़ा

अलमोड़ा से ६५ कि.मी. की दूरी पर स्थित द्वाराहाट अपने प्राचीन मंदिरों के लिये जाना जाता है। यहाँ से १४ कि.मी. की ऊँचाई पर पर्वत शिखर पर अनादि काल से स्वयंजात शक्तिपीठ माँ दुनागिरी का प्राचीन मंदिर है। १४ कि.मी. सड़क से चढ़ाई तय करने पर 'मंगलीखान' नामक स्थान आता है। यहाँ से माता के मन्दिर में जाने के लिए एक कि.मी. की पैदल यात्रा सीढ़ियाँ चढ़कर की जाती है, जिनके ऊपर टीन-सेड व घंटियाँ टंगी हैं। प्राचीन काल में सन्त-महात्मा तथा तीर्थ-यात्री इसी मंगलीखान में आश्रय लेकर सर्वमंगला माँ भगवती का गुणगान करते थे, इसलिए इस स्थान का नाम मंगलीखान पड़ा।



दुनागिरी मन्दिर, अलमोड़ा

दुनागिरी सिंहवाहिनी दुर्गा : दुनागिरी प्राचीन सिद्धपीठ है। यहाँ शिव और शक्ति का वास है। मानस खण्ड में दुनागिरी देवी का नाम 'वह्निमती' है। क्योंकि वैदिक काल में दुर्गा अग्नि (वह्नि) स्वरूपा मानी जाती थी। जैसा इस श्लोक में है -

द्रोणाद्यैवसुभिः पुण्यैः पूजितां मृगवाहिनीम् ॥

देवीं वह्निमतीं सम्पूज्य सिद्धिं यान्ति मानवाः ॥ १ ॥

मन्दिर के गर्भ गृह में देवी भगवती के दो शिला-विग्रहों की पूजा-अर्चना अनादि काल से चली आ रही है। इन दो शिला-विग्रहों (पिण्डियों) के बारे में अनेक मत हैं। कोई इन्हें 'प्रकृति' और 'पुरुष' का प्रतीक, तो कोई 'शिव' और 'शक्ति' का प्रतीक बताता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार दुनागिरी पर्वत के दो सिर माने जाते हैं, जिन पर भगवती दो रूपों - 'दुर्गा' और 'कालिका' के रूप में निवास करती हैं।

दुनागिरी पर्वत का माहात्म्य यहाँ देवी भगवती के प्रसिद्ध मंदिर को लेकर है, वहाँ पर्यावरण की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भी इसकी ख्याति है। यहाँ की दुर्लभ जड़ि-बूटियों और स्वच्छ जलवायु के द्वारा पूरा प्रदेश लाभान्वित होता है। इन्हीं विशेषताओं का वर्णन हमें बद्रीदत्त पाण्डे की पुस्तक

'कुमाऊँ का इतिहास' में मिलता है, जो इस प्रकार है - "द्वाराहाट के ऊपर दुनागिरी उर्फ द्रोणांचल पर्वत में वैष्णवी देवी है। इनको बलि-दान नहीं किया जाता। इस पहाड़ में अच्छी घास और वनस्पतियाँ हैं, जिनको चरकर गाय-भैंस खूब दूध देती हैं। कहते हैं कि वहाँ पर एक घास काटने वाली की लोहे की दराती सोने की हो गयी थी। वहाँ की जड़ि-बूटियों का प्रभाव ऐसा जबरदस्त बताया जाता है।"

दुनागिरी के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि इस पर्वत पर ऋषि-मुनियों ने अपने आश्रम स्थापित किये थे। द्वापर युग में पाण्डवों के गुरु द्रोणाचार्य ने यहाँ तप किया था। गर्ग मुनि का आश्रम भी दुनागिरी क्षेत्र में था। उनकी तपस्या के प्रभाव से गर्गी (गगास) नदी का

उद्गम हुआ, जो आगे चलकर रामगंगा में मिल जाती है। जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य ने भी दुनागिरी माँ के दर्शन किये थे और उन्होंने कलकत्ते की काली, हरिद्वार की चण्डी तथा द्रोणागिरी की भगवती को एक समान सिद्ध पीठ बताया था। वनवास काल में पांडवों ने यहाँ 'पाण्डुखोली' नामक स्थान पर निवास किया था। महावतार बाबाजी ने एक गुफा में श्यामाचरण लाहड़ी महाशय को क्रियायोग की दीक्षा दी थी। इसके अलावा उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध सन्तों ने इस पर्वत पर आकर साधना की, ऐसा प्रमाण पाया जाता है।

वैष्णवी शक्तिपीठ दुनागिरी : भारत में वैष्णवी शक्तिपीठों में कश्मीर में स्थित वैष्णव देवी के बाद गुप्त शक्तिपीठ दुनागिरी की वैष्णवी माता की प्रतिष्ठा है। इसे कुमाऊँ की वैष्णवी देवी के रूप में मान्यता प्राप्त है।

दुर्गा-सप्तशती में भगवती के जिस वैष्णवी शक्ति का वर्णन आया है, उसकी अनुभूति साधकों को यहाँ होती है, जिसमें कहा गया है : -

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या

विश्वस्य ब्रीजं परमासि माया ।

गांधी विचारधारा आज भी प्रासंगिक

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट, गुजरात

कुछ समय पहले ५२ नोबल प्राप्त विजेताओं ने ऐसा निवेदन किया कि विश्व की सभी समस्याओं का समाधान महात्मा गांधी जी के बताए हुए मार्ग से निकल सकता है। अमेरिका में एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है, जिसका कार्य है - विश्व की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के प्रमुख प्रशासकीय अधिकारियों (चीफ एक्जीक्युटीव ऑफिसरों) को प्रशिक्षण देना। इस संस्था ने कुछ समय पहले एक अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया था। जिसमें विश्व की कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के चीफ एक्जीक्युटीव ऑफिसरों ने भाग लिया था। इनको गांधीजी पर फिल्म दिखाई गई। फिल्म देखने के बाद सभी चीफ एक्जीक्युटीव ऑफिसर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि गांधीजी के जीवन में कम-से-कम चालीस ऐसे गुण मिलते हैं, जो आधुनिक नेतृत्व के लिए प्रेरणा बन सकते हैं।

आज नेतृत्व के क्षेत्र में विशेषतः पाश्चात्य देशों में 'सर्वेन्ट लीडरशीप' का सिद्धान्त बहुचर्चित है। गांधीजी ने तो बहुत वर्षों पूर्व इस बात का प्रतिपादन किया था कि नेताओं को अपने जीवन में सेवा और त्याग की भावना को अपनाना चाहिए। उनका जीवन इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। जब हमारा राष्ट्र स्वाधीन हुआ, तब यदि चाहते, तो गांधीजी राष्ट्र के प्रधानमन्त्री बन सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, कोई भी पद स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, जिस दिन स्वाधीनता मिली, जिस दिन समूचा राष्ट्र खुशियाँ मन रहा था, उस समय गांधीजी, जिन्होंने इस स्वाधीनता की प्राप्ति के लिये अपना सर्वस्व बलिदान दे दिया, नोआखली के गलियों में पीड़ित लोगों के बीच धूम रहे थे, दुखियों के आँसू पोंछ रहे थे। इस प्रकार गांधीजी का जीवन 'सर्वेन्ट लीडरशीप' के सिद्धान्त का उत्कृष्ट उदाहरण है।



प्रबन्धन - 'मैनेजमेंट' के क्षेत्र में आज कई बड़े उद्योगपति ऐसा मानते हैं कि गांधीजी द्वारा प्रतिपादित 'ट्रस्टीशीप मैनेजमेंट' का सिद्धान्त बहुत प्रासंगिक है। क्योंकि इस सिद्धान्त के पालन से मजदूर संघ एवं मैनेजमेंट के बीच की वैमनस्य की भावना, हड्डताल, झगड़े आदि कम होते हैं, उत्पादकता बढ़ती है और मानव-सम्बन्ध सुधरते हैं।

आज विश्व शान्ति एक बहुत बड़ी समस्या है। आधुनिक मानव ने ऐसे भयानक आणविक अस्त्रों की खोज की है कि जिससे पूरे विश्व का विनाश एक बार नहीं, कई बार हो सकता है। ऐसी विकट परिस्थिति में गांधीजी का अहिंसा का सिद्धान्त अत्यन्त प्रासंगिक है। विश्व के सुप्रसिद्ध इतिहासकार

सर आर्नोल्ड जे. टायन्बी ने ठीक ही कहा था - "हमारे इतिहास के वर्तमान अध्याय का प्रारम्भ पाश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता से हुआ था, किन्तु यदि समूचे विश्व को सम्पूर्ण विनाश से इस आणविक युग में बचाना हो, तो उसका अन्त प्राच्य संस्कृति एवं सभ्यता से होना चाहिए। महात्मा गांधी और सम्राट अशोक द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का सिद्धान्त और श्रीरामकृष्ण देव द्वारा अपने जीवन की प्रयोगशाला में प्रमाणित करके दिखाया गया सर्वधर्म समन्वय का संदेश, ये ही मूल्य हैं, ये ही आदर्श हैं, जो सम्पूर्ण विश्व को सम्पूर्ण विनाश से बचा सकते हैं।"

आज हम कम्युनिकेशन टेक्नोलॉजी में बहुत आगे बढ़ गये हैं। विश्व एक 'ग्लोबल विलैज' - वैश्विक गाँव बन गया है। भौतिक दूरी तो बहुत कम हो गयी, किन्तु विडम्बना यह है कि मानव-मानव के बीच मन की दूरी और भी बढ़ गयी है। इस सन्दर्भ में गांधीजी द्वारा प्रतिपादित विश्व बन्धुत्व का

संदेश अत्यन्त प्रासंगिक है, चूँकि यही संदेश मानव-मानव को प्रेम के धागे से जोड़ सकता है।

गाँधीजी के प्रार्थना सभा में सभी धर्मों के प्रार्थना का समन्वय होता था। वे 'सर्वधर्मसम्भाव' का प्रचार करते थे। आज धर्म के नाम पर इतनी टकराहट हो रही है, साम्राज्यिकता के नाम पर झगड़े हो रहे हैं, धार्मिक कट्टरता आतंकवाद के रूप में उभर रही है, तब समाज में शान्ति की स्थापना के लिए गाँधीजी द्वारा प्रतिपादित सर्वधर्म सम्भाव का उपदेश अत्यन्त प्रासंगिक है।

आज हमारे देश के विकास के लिये देशवासियों में देशभक्ति की भावना की बहुत आवश्यकता है। गाँधीजी ने युवकों को देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत होकर देश की सेवा में लग जाने का आह्वान किया था। ३० जनवरी, १९२१ के दिन उन्होंने रामकृष्ण मठ एवं मिशन के मुख्यालय बेलूँ मठ में उपस्थित युवकों को देशभक्ति की भावना से प्रेरित होने के लिये आह्वान करते हुए कहा था, "जिस महान स्थान पर स्वामी विवेकानन्द ने निवास और

पृष्ठ ४६५ का शेष भाग

पूर्णता प्रभावित होती है तथा कार्य की अपेक्षित गुणवत्ता प्रभावित होकर निम्न स्तर की हो जाती है।

कार्य का रहस्य

यदि कार्य करते समय फल का प्रलोभन कार्यकर्ता के मन में न आये, तो क्या होगा? गीता हमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण शिक्षा देती है – हम कर्म कैसे करें?

सक्ता: कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुलोकसङ्ग्रहम्। ३/२५।।

– कर्म में आसक्त हुए अज्ञानीजन जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान भी लोकशिक्षा के लिये कर्म करे।

यही गीता की बहुत ही महत्वपूर्ण नैतिक शिक्षा है। जो मनुष्य गीता का अनुसरण करता है, यह उसे एक दक्ष तथा सिद्ध कार्यकर्ता बनाती है। वह फल की कामना नहीं करता है। इस तरह उसकी सम्पूर्ण ऊर्जा तथा शक्ति हाथ में लिए हुए कार्य को समर्पित होती है और वह कार्य सर्वश्रेष्ठ रूप से सम्पन्न होता है। वह कार्यकर्ता सभी प्रकार की शंका तथा चिन्ता से मुक्त हो जाता है। यही शान्तिपूर्ण तथा सफल जीवन का रहस्य है। ○○○

पृष्ठ ४५९ का शेष भाग

डिक्सन स्कॉलरशिप के तहत नेत्रा को १ लाख रुपये की छात्रवृत्ति राशि सम्मान के रूप में मिली है। संयुक्त राष्ट्र विकास और शान्ति संघ के द्वारा नेत्रा को प्रोत्साहित करना गरीब एवं वंचित लोगों तक पहुँचने और उन्हें मदद करने का महत्वपूर्ण अवसर है।

नेत्रा ने लोगों को कोरोना विश्वमहामारी के काल में अपने योगदान से यह सन्देश दिया है कि चाहे जितनी भी

देह-त्याग किया, वहाँ से कुछ प्रेरणा लिये बिना, खाली हाथ वापस नहीं जाना। यहाँ की कुछ प्रेरणा अपने हृदय में संजोकर जाना। स्वामी विवेकानन्द जी के ग्रन्थों का अध्ययन करना। मैंने स्वामीजी के ग्रन्थों को बड़ी ही गहराई से पढ़ा है, उनको पढ़ने के बाद मेरी देशभक्ति हजार गुना बढ़ गई है।"

आधुनिक युवा वर्ग अपने कैरियर डेवलपमेंट के लिए तो जागरूक हैं, किन्तु देशप्रेम की भावना का उनमें अभाव है। इसीलिये हमारे राष्ट्र के पास इतना अधिक और इतना शिक्षित प्रतिभासम्पन्न युवा-धन होते हुए भी अब तक हम 'विकसित राष्ट्र' के नागरिक नहीं बन पाए हैं। आज देश की समस्याओं के मूल में है – देशभक्ति की इस भावना का देशवासियों में अभाव।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे देश की एवं विश्व की विभिन्न समस्याओं का समाधान हमें गाँधीजी के जीवन और सन्देश में मिलता है। गाँधीजी इसीलिए आज भी प्रासंगिक हैं। ○○○

कठिन और विपरीत परिस्थितियाँ हों, हमें उन परिस्थितियों में भी वंचित एवं जरूरतमन्दों की सहायता के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। नेत्रा अपने उज्ज्वल भविष्य की परवाह न करते हुए दृढ़ निश्चय एवं निःस्वार्थ भाव से गरीबों की सेवा के लिए आगे आई। नेत्रा ने इस सराहनीय एवं महान् कार्य से देश का नाम ही उज्ज्वल नहीं किया बल्कि पूरे विश्व पटल पर लोगों को जागरूक भी किया है। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (७०)

स्वामी भूतेशानन्द

(४६)

प्रश्न — स्वामी निखिलानन्द ने स्वामी शुद्धानन्द जी को एक बार कहा था कि स्वामीजी एक महान वक्ता थे। शुद्धानन्दजी ने उत्तर में कहा, हाँ, जो तीन महीने तक विद्यालय में नौकरी नहीं कर सके, वे अब महान वक्ता, महान शिक्षक थे ! निखिलानन्दजी ने कहा — स्वामीजी का कार्य छात्रों को चराना नहीं है। बारह वर्ष तक विद्यालय में पढ़ाने पर व्यक्ति मूर्ख हो जाता है।

महाराज — स्वामीजी को जीवन में कितना अनुभव हुआ था ! मैं सुना हूँ, जब उन्होंने विद्यासागर के स्कूल से सुना कि उन्हें अब आने की आवश्यकता नहीं है, तब उन्होंने कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्होंने केवल कहा था — ‘मैंने अच्छी तरह से शिक्षा देने का प्राणपण से प्रयास किया। उन लोगों को क्यों अच्छा नहीं लगा, कौन जाने !’

— सुना हूँ, उसके लिए विद्यासागर के दामाद उत्तरदायी थे। स्वामीजी की दृढ़ और स्वतन्त्र मनोभावना उन्हें अच्छी नहीं लगी। स्वामीजी के विरुद्ध में ये सब नाटक उनकी ही रचना है।

महाराज — विद्यासागर के दामाद को मैंने देखा है। शायद उनमें प्रतिद्वन्द्विता का भाव आ गया था। विद्यालय में वे अपने विरुद्ध किसी दूसरे प्रतियोगी को सहन नहीं कर पाते थे। कैसी परिस्थिति थी ! स्वामीजी किसी विद्यालय में शिक्षक की नौकरी तक नहीं प्राप्त कर सके !

— उस समय श्रीम ने कहा था — “क्या मैं तुम्हारे लिए कुछ छात्रों की व्यवस्था कर दूँ, जिससे तुम उनके घर जाकर पढ़ाकर धनार्जन कर सकते हो ? स्वामीजी ने कहा था — “नहीं”

महाराज — स्वामीजी नौकरी के लिए ऑफिस-ऑफिस में घूम रहे हैं। किन्तु किसी ने भी उन्हें स्वीकार नहीं किया, सबने वापस कर दिया। कैसी दयनीय अवस्था थी ! वे उस समय के स्नातक थे। उस समय स्नातक बहुत मिलते नहीं थे और स्वामीजी जैसे बुद्धिमान मेधावी व्यक्ति को नौकरी नहीं मिल रही है। यह एक दैवी लीला थी। वास्तव में उन्होंने

कर्त्तव्य होने के लिए जन्म नहीं लिया था।

— महाराज ! आज यहीं तक, समय हो गया है।

महाराज — समय हो गया है? क्या तुम उसे वापस नहीं ला सकते हो ?

— वैसा अतिमानव कहाँ पाऊँगा ?

महाराज — जब मैं बेलूड मठ में ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में प्रशिक्षण देता था, तब कहता था, किसी सत्र के आगे या पीछे मुझे क्लास मत दीजिएगा। क्योंकि मैं सत्र समाप्त हो जाने पर भी रुकता नहीं था, (पढ़ाता रहता था)। इसलिए प्रायः मुझे अन्तिम सत्र दिया जाता था और प्रायः मैं सत्र समाप्त होने के बाद भी पढ़ाता रहता था।



प्रश्न — लिंकन के सम्बन्ध में एक कहानी है। वे शायद बहुत कुरुप थे। वे और डगलस एक बार राष्ट्रपति (प्रेसिडेन्ट) पद के प्रार्थी थे। उन लोगों में एक बार तर्क हुआ। डगलस कहते — “लिंकन दुम्हूँहे व्यक्ति हैं। इसलिए उनको वोट मत दीजिए।” उत्तर में लिंकन कहते — डगलस के कथनानुसार मेरा दो मुँह है। किन्तु यदि सचमुच मेरा एक दूसरा मुँह होता, तो क्या मैं ऐसा कुरुप मुँह लेकर निकलता ?”

महाराज — वर्नांड शा की कहानी जानते हो तो ? एक अभिनेत्री एलेन टेरी ने वर्नांड शा को प्रस्ताव दिया — यदि आप मुझसे विवाह करते हैं, तो हमलोगों की सन्तान मेरे जैसी सुन्दर और आपके समान बुद्धिमान होगी।” तब शा ने कहा — “हाँ, सब कुछ ठीक ही है, किन्तु यदि उलटा हो जाय तो ?” (सभी हँसते हैं)

प्रश्न — अच्छा महाराज, आपने स्वामीजी को नहीं देखकर भी स्वामीजी के शिष्यों को तो देखा है?

महाराज — वह बहुत पहले की बात है।

— वही बात हमलोग सुनना चाहते हैं।

महाराज — एक बार शुद्धानन्दजी महाराज ने मुझे लिखा, क्या हमलोग तुम्हें तपस्या से वापस आने के लिए अनुरोध

कर सकते हैं? उनका पत्र पाकर जैसे गया था, वैसे ही चला भी आया।

- महाराज ! आप तो कुछ दिन कनखल सेवाश्रम में तपस्या कर रहे थे। स्वामी कल्याणानन्द जी महाराज को आपने कैसा देखा?

महाराज - विचित्र व्यक्ति थे ! जब वे मसूरी या अन्य कहीं जाते, तो आश्रम के खर्च के लिये एक भी पैसे देकर नहीं जाते थे। एक भण्डारी थे स्वामी आत्मानन्द जी। उनके पास ही रुपये-पैसे रहते थे। आश्रम संचालन हेतु साधुओं को प्रतिदिन उनके पास ही जाकर भिक्षा माँगनी पड़ती थी। एक दूसरी मजेदार घटना है – अपनी रक्षा हेतु आश्रम में एक रायफल था। वह कल्याणानन्द जी के घर में रखा रहता था।

- सम्भवतः उस समय आसपास बहुत से जंगली पशु आते-जाते थे।

महाराज - पशु-प्राणी नहीं, वहाँ बहुत डकैती होती थी। एक दिन आसपास किसी स्थान से बहुत से हो-हल्ला हो रहा था। हमलोगों ने सोचा, हो सकता है डकैती पड़ी है। बाहर क्या हुआ है देखने के लिए स्वामी निश्चयानन्द ने बन्दूक माँगा, किन्तु कमरे में से कोई आवाज नहीं आयी।

पृष्ठ ४६८ का शेष भाग

सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् ।

त्वं वै प्रसन्ना भुविमुक्तिहेतु : ॥^३

'तुम अत्यन्त बलशाली वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्व की कारणभूता परामाया हो। हे देवी ! तुमने इस समस्त जगत को सम्मोहित कर रखा है। तुम्ही प्रसन्न होने पर इस पृथ्वी पर मोक्ष की प्राप्ति कराती हो।'

कुमाऊँ की लोकपरम्परा के अनुसार दुनागिरी देवी यहाँ महादेव सहित पार्वती देवी के रूप में पूजी जाती हैं। वे भक्तों द्वारा सुहागिन देवी के रूप में चूड़ी, चरेऊ (सुहाग का प्रतीक हार), सिन्दूर आदि शृंगारिक वस्तुओं द्वारा पूजित होती हैं। ऐसा विश्वास जनमानस में है कि देवी दाम्पत्य जीवन को सुखी बनाती हैं, इसलिये विवाहोपरान्त नव-विवाहित युगल माँ के दर्शनार्थ अवश्य आते हैं।

चैत्र नवरात्र और आश्विन नवरात्र में मन्दिर में विशेष पूजा का आयोजन होता है। आश्विन नवरात्र में अष्टमी को यहाँ मेला लगता है, जिसमें भक्तजन जागरण करते हुए माँ

कल्याणानन्दजी दरवाजा बन्द कर कमरे में ही हैं। कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं। तब निश्चयानन्दजी एक बड़ी लाठी लेकर देखने गये कि क्या हुआ है। वहाँ जाकर देखते हैं, झाड़ूदार सब शराब पीकर आपस में झांगड़ा कर रहे हैं। स्वामी निश्चयानन्द जी को देखकर वे सब डर गये। उन्होंने भी उन सबको बहुत डाँटा। उसके बाद उन सबके शान्त होने पर वे वापस आ गये। लेकिन दूसरे दिन सबरे बहुत देर बाद भी दरवाजा नहीं खोल रहे हैं, यह देखकर सभी उनको बुलाने लगे, किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। उनसे पूछा गया – “महाराज आप बाहर क्यों नहीं निकल रहे हैं?” महाराज ने कहा – “मैं निकल नहीं पा रहा हूँ।” क्यों नहीं निकल पा रहे हैं, यह उन्होंने नहीं बताया। तब एक साधु ने दिवार पकड़ ऊपर उठकर रोशनदान से देखा कि वे भीतर हैं। तब हुआ क्या है? कल्याणानन्दजी ने कहा – “मैं दरवाजा नहीं खोल पा रहा हूँ।” वास्तव में जब बहुत हल्ला हो रहा था, तब वे भयभीत होकर एक लोहा के सन्दूक को खींचकर वहाँ टिका दिये थे और अब उसे हिला नहीं पा रहे हैं। तब लोगों ने रोशनदान की खिड़की से कमरे में प्रवेश कर उस सन्दूक को हटाया, तो वे बाहर आये। (**क्रमशः**)

के भजन कीर्तन में रात्रि-यापन करते हैं।

दुनागिरी देवी कुमाऊँ की ही नहीं, समूचे उत्तराखण्ड की महाशक्ति हैं। यहाँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों से साधक योग साधना हेतु आते हैं। पर्यटकों के लिये भी यह स्थान विशेष आकर्षण का है। क्योंकि यहाँ सड़क से पहुँचना आसान है, यहाँ त्रिशूल आदि पर्वत शिखर साफ दिखाई पड़ते हैं। यह स्थान ८००० फीट की ऊँचाई पर ठण्डी जलवायु व अपने सघन वनों के लिये प्रसिद्ध है। यहाँ से चारों ओर के नगर व गाँवों का दृश्य बड़ा मनोहारी लगता है।

सबसे प्रमुख है आस्था और विश्वास, जो लोगों को इस वैष्णवी माँ के दर्शनार्थ खींच लाता है। इसीलिए वर्षभर यहाँ भक्तों का आवागमन बना रहता है। ऐसा आदिकाल से होता चला आ रहा है और होता रहेगा, यहीं तो माँ की परम अनुकम्पा कहीं जा सकती है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – १. मानसखण्ड (३६, १७-१८), २. कुमाऊँ का इतिहास पृ. १७, ३. दुर्गासप्तशती, ११/५.

गीतातत्त्व-चिन्तन (४)

दशम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व-चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर, २०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है १०वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतयः ।

याभिर्विभूतिभिलोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

त्वम् हि (आप ही) दिव्या: आत्मविभूतयः (अपनी दिव्य विभूतियों को) अशेषेण वक्तुम् अर्हसि (पूर्णतया कहने में सक्षम हैं) याभिः विभूतिभिः (जिन विभूतियों से) इमान् लोकान् (इन सब लोकों को) व्याप्य तिष्ठसि (व्याप्त करके स्थित हैं)।

"आप ही अपनी दिव्य विभूतियों को पूर्णतया कहने में सक्षम हैं जिन विभूतियों से आप इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं।"

अर्जुन कहता है कि भगवन्, आपकी विभूतियों का वर्णन करने में आप स्वयं सक्षम हैं। उन विभूतियों को दूसरा भला क्या जाने! आपकी जिन दिव्य विभूतियों के सम्बन्ध में – वक्तुम् अर्हसि अशेषेण – सम्यक् रूप से कहने में आप ही समर्थ हैं। जिन विभूतियों से आप संसार में रमें हुए हैं, उन विभूतियों को कहने में आप ही समर्थ हैं। इसलिए –

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

योगिन् (हे योगेश्वर!) अहम् (मैं) कथम् सदा परिचिन्तयन् (किस प्रकार सदा चिन्तन कर) त्वाम् विद्याम् (आपको

जानूँ च (और) भगवन् (हे भगवन!) केषु केषु भावेषु (किन-किन भावों से) मया (मेरे) चिन्त्यः (चिन्तन करने योग्य) असि (हैं)।

"हे योगेश्वर! मैं किस प्रकार सदा चिन्तन कर आपको जानूँ और हे भगवन्! आप किन-किन भावों से मेरे चिन्तन करने योग्य हैं?"

हे भगवन्, आपका चिन्तन करता हुआ मैं आपको कैसे जानूँ? किस प्रकार से मैं आपका सदा चिन्तन कर सकता हूँ? यह अर्जुन का प्रश्न है। उसकी समस्या यह है कि मैं भगवान का चिन्तन करना चाहता हूँ, पर मैं निरन्तर चिन्तन कैसे करूँ? अर्जुन की यही जिज्ञासा है कि यह चिन्तन किस प्रकार किया जाए।
केषु केषु च भावेषु – अर्जुन
 कहता है कि भगवन्, मन में एक ही प्रकार का भाव नहीं टिक पाता। मनुष्य एक ही प्रकार के भाव को हरदम स्थायी नहीं बना सकता। कभी एक प्रकार का भाव अच्छा लगता है, तो कदाचित् वही भाव बाद में पसन्द न आए। मानो उखड़ जाता है। तब वह दूसरी तरफ चला जाता है। जैसे जीवन के अन्य विषयों के साथ है। कभी-कभी कोई चीज आपको खाने में बहुत रुचिकर लगती है। फिर कभी वही चीज अच्छी नहीं लगती। यह तो मनुष्य का स्वभाव है। कोई एक बात, कोई एक विषय हमेशा मन को नहीं रुचता। तो भगवान के सम्बन्ध में हम चिन्तन कर रहे हैं। उसमें भी एक ही प्रकार का भाव अच्छा नहीं लगता। इसीलिए अर्जुन का प्रश्न है कि क्या और भी कोई भाव है, जिसमें मन को लगाया जा सके। भगवन्, यदि बहुत-से भाव हों, चिन्तन की अलग-अलग प्रणालियाँ हों, तो कहिए। अर्जुन का तात्पर्य है कि मैं हर तरह से अपने मन को लगाने में समर्थ हो सकूँगा और आपका चिन्तन कर सकूँगा।

अर्जुन द्वारा भगवान से स्वयं प्रकट करने की प्रार्थना

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन ।

भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥ १८ ॥

जनार्दन (हे जनार्दन!) आत्मनः योगम् (अपने योग)



च विभूतिम् (और विभूति को) भूयः विस्तरेण कथय (फिर विस्तार से कहिए) हि (क्योंकि) अमृतम् श्रृण्वतः: (आपके अमृतमय वचनों को सुनते) मे तृप्तिः (मेरी तृप्ति) न अस्ति (नहीं होती)।

“हे जनार्दन! अपने योग और विभूति को फिर विस्तार से कहिए, क्योंकि, आपके अमृतमय वचनों को सुनते मेरी तृप्ति नहीं होती।”

हे जनार्दन, अपनी विभूति के सम्बन्ध में, अपने योग के सम्बन्ध में, आप कृपया विस्तार से कहिये। भूयः कथय - आप फिर से बताइये। ये जो आप कह रहे हैं, तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं अमृत सुन रहा हूँ। मुझे अमृत के समान मीठ लग रहा है और इसलिए किसी प्रकार मेरी तृप्ति नहीं हो पा रही है। आप जितना कह रहे हैं, उतना ही सुनने की अधिक इच्छा हो रही है। इसीलिए आप फिर से विस्तार से बताइए। भगवान बताते भी हैं। उपदेश तो व्यक्ति देता जा रहा है और सुननेवाले सोचते हैं कि कब यह बन्द करे। वहाँ उपदेश की तो कोई सार्थकता नहीं है। इस प्रकार उपदेश देने का कोई मतलब भी नहीं होता। जहाँ पर उपदेश ग्रहण करने की प्रतीता है, वहाँ बात भिन्न होती है। इसीलिए अर्जुन कहता है कि आपकी बातें मुझे अमृत जैसी मालूम होती हैं। सुनने से तृप्ति नहीं होती। आप कृपया विस्तार से अपनी विभूतियों के सम्बन्ध में बताइए। जब अर्जुन को सुनने के लिए इतना उत्सुक पाया, तो भगवान कहते हैं।

विभूतियों के माध्यम से ईश्वर-चिन्तन की विधि

श्रीभगवान उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।

प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे॥१९॥

श्रीभगवान उवाच (श्रीभगवान बोले) कुरुश्रेष्ठ (हे अर्जुन!) प्राधान्यतः (मुख्य) दिव्याः (दिव्य) आत्मविभूतयः (अपनी विभूतियाँ) ते कथयिष्यामि (तुझसे कहूँगा) हि (क्योंकि) मे विस्तरस्य (मेरे विस्तार का) न अन्तः (अन्त नहीं है)।

“हे अर्जुन ! अपनी मुख्य दिव्य विभूतियाँ तुझसे कहूँगा, क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है।”

यहाँ हन्त का तात्पर्य क्या है? आनन्द से या दुःख से यह सम्बोधन निकलता है। संस्कृत भाषा में हा या हन्त उस वक्त प्रयोग में लाया जाता है, जब हृदय आनन्द या दुःख से भर जाता है। मानो यहाँ बड़ी प्रसन्नता हो गई, जब अर्जुन

कहता है कि आपकी बात मुझे अमृत के समान मीठी लग रही है और मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। आप और बताइए। तब भगवान के मुख से यह उद्गार निकला - हन्त ! तेरे प्रति मैं अपनी दिव्य विभूतियों की चर्चा करूँगा। मैं अपनी प्रधान-प्रधान विभूतियों के सम्बन्ध में कहूँगा। किसलिए? नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे - क्योंकि मेरी विभूतियों का कोई अन्त नहीं है। मैं कहाँ तक अपनी विभूतियों के सम्बन्ध में तुम्हें बताता जाऊँगा। मेरी विभूतियाँ अनन्त हैं। प्रधानता से जो मुख्य-मुख्य बातें हैं, उन्हीं को मैं तेरे समक्ष रखता हूँ। अब तू सुन। पहली विभूति क्या है? भगवान कहते हैं -

ईश्वर की पहली विभूति : वे समस्त

प्राणियों के आत्मतत्त्व

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥२०॥

गुडाकेश (हे अर्जुन !) अहम् (मैं) सर्वभूताशयस्थितः (सब प्राणियों के भीतर विराजमान) आत्मा (आत्मा हूँ) च (और) भूतानाम् आदिः मध्यम् (सबका आदि मध्य) च अन्तः च अहम् (और अन्त भी मैं) एव (ही हूँ)।

“हे अर्जुन! मैं सब प्राणियों के भीतर विराजमान आत्मा हूँ तथा सबका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।”

अर्जुन, देख ! पहले प्रकार से तू इस तरह से चिन्तन कर सकता है। क्या चिन्तन कर सकता है? भगवान कहते हैं, हे गुडाकेश ! अर्थात् हे नींद पर विजय पानेवाले अर्जुन, मैं आत्मा हूँ? किसका? सर्वभूताशयस्थितः - सब प्राणियों के अन्दर विराजमान मैं आत्मा हूँ। कुछ लोगों को ऐसा चिन्तन अच्छा लगता है। जो विचारक होते हैं, जो ध्यान करते हैं, उन्हें कभी-कभी विक्षेप हो जाता है। ध्यान करते समय ऐसे विक्षेप अक्सर होते रहते हैं। कभी-कभी ध्यान करते समय कोई व्यक्ति ही हमारे ध्यान का विषय बन जाता है और ध्यान में विक्षेप उत्पन्न करता है। हमारा मन भगवान से हट जाता है। भगवान क्या कहते हैं? ऐसे विक्षेप के समय वह उस व्यक्ति के हृदय में उस तत्त्व को देखने की कोशिश कर सकता है। यह व्यक्ति उसी तत्त्व से परिचालित है। वह आत्मतत्त्व इस व्यक्ति को भी प्रेरणा देता है। जैसे रूप उसके सामने आया, तो रूप के भीतर वह उसी रूप को देखने की कोशिश करता है। साधना की यह एक प्रणाली है। ज्ञानयोगी या विचार प्रवण साधक इसी एक आत्मतत्त्व को

देखने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार रूप उनके लिए गौण हो जाता है। चिन्तन में आत्मा प्रधान बन जाती है। ऐसा अभ्यास करते-करते, धीरे-धीरे जो भी विक्षेप उत्पन्न होते हैं, उन विक्षेपों के रूप क्रमशः नष्ट हो जाते हैं। प्रभु द्वारा अर्जुन को यह पहला तरीका बताया गया। दूसरा तरीका - अहमादिश मध्यं च भूतानामन् एव च - मैं ही समस्त भूतों की उत्पत्ति हूँ, मैं ही उनका कारण हूँ। मैं ही मध्य में विद्यमान हूँ और मैं ही अन्त में भी। जब जीव प्रकट नहीं होता, उसके पहले मैं ही हूँ। जब जीव प्रकट है, तब भी मैं ही हूँ और जब जीव नष्ट हो जाता है, तब भी मैं ही विद्यमान रहता हूँ। यह भी चिन्तन करने का एक दूसरा तरीका है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो ऐसा ही चिन्तन करना पसन्द करते हैं। जैसे उनके ध्यान में कोई रूप खड़ा हो गया, तो वे सोचते हैं, ये रूप तो अभी थोड़ी देर के लिए दीख रहा है। जिस समय यह रूप नहीं था, तब क्या था? मान लो, मेरे ध्यान करने के समय एक व्यक्ति का रूप आकर सामने खड़ा हो गया। अब मैं चिन्तन कर रहा हूँ कि इस व्यक्ति की उप्रचालीस साल की है। अभी यह रूप दिखाई दे रहा है। सम्भव है यह रूप साठ साल तक और रहे। जब यह रूप नष्ट हो जाएगा, तो उसके बाद कौन रहेगा? इस रूप के नष्ट होने के बाद जो रूप रहेगा, जो रूप था इस रूप के उत्पन्न होने के पहले, वही रूप अभी के रूप में घुसा हुआ है। उसी रूप के कारण यह सौ सालवाला रूप दिखाई देता है। ऐसा विचार करके दिखाई देनेवाले रूप को वह गौण बना देता है और भीतर की आत्मा का चिन्तन करता है। यह दूसरा तरीका है।

यह जो विभूति भगवान बताते हैं उसमें अर्जुन के प्रश्न का उत्तर निहित है। अपनी विभूति बताते समय भगवान का तात्पर्य यह नहीं है कि इसके भीतर मैं हूँ, उसके भीतर मैं हूँ इत्यादि इत्यादि। अर्जुन का प्रश्न था कि हमेशा मैं आपका चिन्तन किस प्रकार करूँ? मन के सामने जो बाधाएँ आती हैं, उन बाधाओं को कैसे दूर करूँ? भगवान उन बाधाओं को दूर करने का उपाय बताते हैं। पहला चिन्तन बताया - एक किस्म के व्यक्ति होते हैं, जो ध्यान में विघ्न उपस्थित हुआ, कोई रूप आया, तो वे रूप को गौण बना देते हैं और उसके भीतर की आत्मा को चिन्तन के द्वारा प्रधान कर देते हैं।

आत्मतत्त्व क्या है?

दूसरे प्रकार के लोग होते हैं, उनके ध्यान में जब रूप आता है, तो उनका चिन्तन इस प्रकार चलता है - और, यह रूप! यह रूप तो चालीस साल पहले था ही नहीं। इसके पहले जो रूप था और जब यह रूप नहीं रहेगा, तब जो रूप रहेगा, वह एकमात्र ऐसा रूप है, जो इन सब रूपों में भिन्न हुआ है। जैसे कोई किसी धनी व्यक्ति के बैठकखाने में गया, पर वह धनी व्यक्ति मर चुका है। बैठकखाने में जाकर क्या देखता है? उसकी सौ तस्वीरें टॉंगी हुई हैं। पहली तस्वीर तो वह था। जिस समय वह माँ के पेट से निकला, उसी समय चित्र ले लिया गया। धीरे-धीरे ऐसे ही सौ चित्र देखे जाते हैं। छोटा-सा बच्चा है, घुटने के बल चल रहा है। तीन पैर की साइकिल पर बैठा है, उसका चित्र है। बड़ा हो गया, पढ़ने जा रहा है, विवाह का चित्र है। उसके बच्चों के चित्र हैं। उसके बुढ़ापे का चित्र है और मृत्यु शश्या पर पड़े होने का भी चित्र है। अब इतने सारे चित्र हैं। पर उन सभी की आकृतियों में फर्क तो अवश्य है। जो पहला चित्र है, वह बाकी निन्यानबे चित्रों से नहीं मिलता। इसी तरह, कोई भी चित्र एक-दूसरे नहीं मिलते। सभी परिवर्तन दर्शाते हैं। बाहर के रूपों में परिवर्तन हैं। पर इन भिन्न-भिन्न रूपों के बावजूद एक ऐसा रूप है, जो कहता है ये अलग-अलग रूप उसी एक व्यक्ति के रूप हैं। वही एक व्यक्ति था, जो पैदा हुआ और वही एक व्यक्ति था, जो चिता में लेटा हुआ दिखाई दे रहा है। वह रूप जो इन विभिन्न रूपों को स्थायित्व देता है, भिन्न-भिन्न रूपों को एक सूत्र में जोड़ता है। तो ऐसा भी देखनेवाले कुछ लोग होते हैं, जो ऐसा चिन्तन करते हैं। वह रूप जो पहले था नहीं और वह रूप जो बाद में रहेगा। इस प्रकार दीखनेवाले रूप को गौण बना देते हैं और आत्मा उनके समक्ष प्रधान बन जाती है। यह चिन्तन का दूसरा तरीका है। भगवान अर्जुन से आगे और कहते हैं - (क्रमशः)

चकमक पत्थर के टुकड़े में अग्नि निहित रहती है, उसी प्रकार मनुष्य के मन में ज्ञान रहता है। उद्दीपक धर्षण का कार्य करके उसको प्रकाशित कर देता है।

डरो मत। कितनी बार असफलता मिलेगी, यह न सोचो। चिन्ता न करो। काल अनन्त है।

- स्वामी विवेकानन्द

स्वामी सारदेशानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखीं और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान् त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। - सं.)

स्वामी सारदेशानन्द जी (१८९४-१९८८) के साथ मेरा परिचय उनकी पुस्तक श्रीश्रीचैतन्य देव के माध्यम से हुआ। कोलकाता अद्वैत आश्रम की परम्परा थी – रात्रि-प्रसाद के पश्चात् सब साधु और ब्रह्मचारी के सामने नवीन ब्रह्मचारी, जो अभी सम्मिलित हुआ है, उसे पाठ करना होता था तथा जो नवीन पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसे पढ़ना होता था। यह पाठ १५-२० मिनट तक चलता था। १९५९-६० ई. में सारदेशानन्दजी द्वारा लिखित चैतन्यदेव की जीवनी सुनकर मुझे बहुत प्रेरणा हुई थी और रघुनाथ के प्रति चैतन्यदेव का उपदेश कण्ठस्थ किया था – भावार्थ “ग्राम्य बातों (निंदा) को न तो सुनना और न किसी से कहना। न अच्छा भोजन करना और न ही अच्छे वस्त्र पहनना। मानरहित होकर सबको सम्मान देते हुए सदा कृष्ण का नाम लेते रहना। ब्रज में राधाकृष्ण की मानस-सेवा करना।”

१९५९ ई. में जब मैं वृन्दावन के पुराने आश्रम में गया था, तब सारदेशानन्दजी वहाँ पर नहीं थे। सितम्बर, १९७७ ई. में जब मैं हॉलीवूड से वृन्दावन गया, तब महाराज के साथ भेंट हुई। उनका त्याग-वैराग्य, साधन-भजन और पाण्डित्य देखकर मैं मुग्ध हुआ। श्रीमाँ के शिष्य और उनके हाथों गढ़े हुए यह संन्यासी अनेक संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और भक्तों के मन में आनन्द तथा उद्दीपना जगाते थे। वे वास्तव में गुणी और आदर्श संन्यासी थे। मैं किसी संन्यासी के कमरे में जाने पर उनकी सम्पत्ति – पुस्तक, चित्र इत्यादि देखता हूँ। महाराज के कमरे में देखा – चौकी के ऊपर मोड़कर रखा हुआ एक कम्बल और उस पर एक गेरुआ चादर, एक छोटा तकिया, सिर के पास एक छोटा-सा टेबल पंखा; चौकी के एक किनारे कई पुस्तकें, एक छाता, एक लाठी, एक जोड़ा चप्पल, दो-तीन छोटा वस्त्र और चादर; मेज पर ठाकुर और श्रीमाँ का चित्र; एक जल का घड़ा, एक बड़ा कटोरा, जिसे वे प्रसाद के समय भोजन कक्ष में ले जाते थे। हम सब एक साथ प्रसाद पाते थे। उनके लिए कोना में एक

निर्दिष्ट स्थान था। भात, दाल, सब्जी सब कुछ मिलाकर उसे मसलकर गोला बनाकर खाते थे। क्योंकि उनके सभी दाँत प्रायः गिर चुके थे। प्रसाद के उपरान्त वे अपना कटोरा स्वयं धोकर अपने कमरे में ले जाते थे। जब वे मन्दिर में गये थे, तब उनके कमरा का एक चित्र लिया था।

महात्मा गांधी की मृत्यु के बाद उनके कमरे में क्या था, महाराज की सम्पत्ति इसकी स्मृति करा देती है। गांधीजी के कमरे में पाया गया – एक जोड़ा लकड़ी का चप्पल तथा एक जोड़ा चमड़ा का चप्पल, एक पॉकेट घड़ी, चिट्ठी खोलने के लिए एक छुरी, एक पिकानी, एक चश्मा, एक गीता, एक सफेद और एक काला कटोरा, एक चम्मच और मुँह बन्द किया हुआ, कान बन्द किया हुआ तथा नेत्र बन्द किया हुआ बन्दर की मूर्ति। इस जगत में वैराग्यवान व्यक्ति की सभी श्रद्धा करते हैं। क्योंकि ‘वैराग्यमेव अभयम्’ – वैराग्य ही मनुष्य को अभय प्रदान करता है।

महाराज रात्रि प्रसाद के उपरान्त लाइब्रेरी में कक्षा के लिए आकर बैठते थे। एक संन्यासी ने पूछा, “क्या आज कक्षा होगी?” महाराज ने तत्क्षण उत्तर दिया, “क्यों! भोजन के पूर्व तो पूछा नहीं कि आज भोजन होगा क्या?” कक्षा हुई। तदुपरान्त उन्होंने कहा, “कक्षा के बदले चेतनानन्द से उस देश की बातें सुनना अच्छा रहेगा।” बाद में महाराज ने मुझसे पूछा था, “तुम लोग उस देश में क्या करते हो?” मैंने अपने हॉलीवूड केन्द्र का समय-सारणी बताया – “प्रातः, दोपहर और सन्ध्या ध्यान होता है। संन्यासिनी पूजा करती है। तदुपरान्त जिसका जो कार्य है, वह अपना-अपना कार्य करता है। अमेरिका में हमारा भोजन पकाने के लिए कोई नौकर नहीं है – बाजार करना, भोजन बनाना, बर्तन माँजना, वस्त्र धोना ये सब कार्य स्वयं करना होता है। सप्ताह में दो दिन कक्षा और रविवार को व्याख्यान होता है। उन्होंने सब सुनकर कहा, “देखो, तुम लोग उनको वेदान्त सिखाते हो, अच्छा है – किस प्रकार आदर्श गृहस्थ हुआ जाये,

यह भी उनलोगों को बताना। उनके बीच इतने तलाक होते हैं कि उनका पारिवारिक जीवन बिखर जाता है। पुत्र-पुत्री के प्रति स्नेह-प्रेम बढ़ने से तलाक कम होगा, गृहस्थी में शान्ति आयेगी।”

मैं आश्र्वयचकित होकर सुनता रहा, श्रीमाँ के एक वृद्ध सन्तान अमेरिकवासियों का किस प्रकार कल्याण हो, इसकी चिन्ता कर रहे हैं।

१४/०९/१९७७, वृन्दावन

सारदेशानन्दजी के साथ मठ-मिशन के कार्य को लेकर लम्बे समय तक विचार-विमर्श हुआ। यद्यपि उन दिनों वे सेवारत नहीं थे, तथापि संघ के कल्याण के लिए सदा चिन्तन करते थे। जहाज के दिग्दर्शन कम्पाश के जैसा वे सन्न्यासियों को लक्ष्य दिखा देते थे। मैंने अपनी दैनन्दिनी में संक्षेप में बहुत कुछ लिखा था। महाराज की एक बात बहुत याद है : “महापुरुष महाराज ने एक साधु को कार्य करने के लिए कहा। उन्होंने कहा, ‘ईश्वर दर्शन ही जीवन का उद्देश्य है, कार्य नहीं।’ महापुरुष महाराज ने नाराज होकर कहा, ‘स्वामीजी ने कहा है कि ठाकुर का कार्य करके चित्तशुद्धि होने से मुक्ति होगी। क्या तुम कहना चाहते हो कि स्वामीजी गलत थे?’”

उस रात्रि महाराज ने मुझसे कहा था, “यदि भगवान का दर्शन करना चाहते हो, तो विश्वास रखो और उनकी इच्छा पर स्वयं को समर्पित कर दो।” उन्होंने और कहा था, “स्वार्थपरता बहुत ही खराब है, क्योंकि वही बन्धन है। फिर भी आत्मरक्षा की आवश्यकता है। देखो, नित्य-नियमित साधन-भजन के अभ्यास का मूल्य बहुत अधिक है। मन को एकाग्र करके योग करो।”

अगले दिन उन्होंने मुझसे कहा था। साधु जीवन में तीन अत्यावश्यक बातें हैं : “पहला है चरित्र। यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तथा नियम – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान – इन सबसे चरित्र गठन होता है। संन्यासी का आदर्श-चरित्र ही मनुष्य को शिक्षा देता है। दूसरा है भक्ति और विश्वास। साधु जीवन में भगवान के प्रति भक्ति और विश्वास अपरिहार्य होता है। केवल भक्ति-विश्वास होने से ही नहीं होता, उसे व्यवहार में दिखाना होगा। तीसरा, परार्थपरता। स्वयं को दूसरों की सेवा में पूर्णरूप से मिटा दो। मनुष्यों के प्रति स्नेह-प्रेम और

सेवा स्वार्थपरता रूपी बन्धन को ध्वंस करता है। संन्यासी का जीवन ही होता है सबसे बड़ा प्रचार।” महाराज कहा करते थे – प्रतिदिन भागवत अध्ययन करने से ईश्वर के प्रति भक्ति होती है।

उन्होंने मुझे और भी दो बातें बतायी थी, “पहला, ठाकुर के भाव का प्रचार। इस युग में ठाकुर के विश्वजनीन उदार भाव का जितना प्रचार होगा, उतना ही मनुष्य का कल्याण होगा। धर्म को लेकर हिंसा, द्वेष और लड़ाई-झगड़ा कम होगा। दूसरा, गृहस्थधर्म का उन्नयन। गृहस्थ लोग ही समाज की नींव होते हैं। गृहस्थ-जीवन दुर्बल होने से समाज दुर्बल होता है। गृहस्थ लोग यदि धार्मिक होते हैं, तो उनके पुत्र-पुत्री भी वैसा ही होने का सुयोग पाते हैं।” मुझे स्मरण है कि एक साधु गृहस्थों को थोड़ा नीच दृष्टि से देखते थे। अन्य एक संन्यासी ने उनसे कहा, “संन्यासी तो गृहस्थ के पेट से ही जन्म ग्रहण करता है। संन्यासी के पेट से तो संन्यासी नहीं होता।”

प्रतिदिन प्रातः नाश्ता के उपरान्त वे ठाकुर मन्दिर में जाते थे। नाट्यमन्दिर के सामने बैठकर वे जप-ध्यान और प्रार्थना किया करते थे। उनके हाथ में छाता और बगल में एक कपड़े की पोटली रहती थी। उसके भीतर स्तोत्र आदि की पुस्तकें रहती थीं। उन्होंने पृथ्वी के प्रायः सभी प्रधान धर्मों के प्रार्थनाओं को एकत्र किया था। उन प्रार्थनाओं को सर्वधर्म-स्वरूपक श्रीरामकृष्ण के सामने पाठ करते थे। छियासी वर्ष के वृद्ध संन्यासी तीन-चार घण्टा ठाकुर के सामने बैठते थे। मन्दिर से स्वामी सारदेशानन्द जी महाराज निकलकर जब वे धूप-चश्मा पहनकर कमरे की ओर जाते थे, तब उनकी कामनाशून्य, निरालम्बन, वैराग्यवान मूर्ति देखकर मन सन्तुष्ट हो जाता था। मैंने एक दिन उसी स्थिति में उनके कमरे में वापस आते समय, उनके साथ खड़ा होकर एक चित्र खींचा था – जो हमारे सेंट लुइस केन्द्र के वेबसाइट में है।



एक दिन मैंने उनसे पूछा, “अपने संघ का भविष्य क्या देख रहे हैं?” उन्होंने दृढ़ विश्वास के साथ कहा, “देखो, मैं ईश्वर पर विश्वास करता हूँ। ठाकुर की जो इच्छा होगी, वही होगा।” हमलोगों का विश्वास सदैव डिगता, हिलता रहता है। किन्तु ये सब संन्यासियों का विश्वास अटल, अचल पर्वत के समान स्थिर तथा दृढ़ है।

१९८६ ई. में मैं सेंट लुइस से पुनः भारत वापस आया

और वृन्दावन में १७ से २० सितम्बर तक निवास किया था। सारदेशानन्दजी उस समय नया साधु-निवास में रहते थे। उस समय उनके दो सेवक – अनुप और सुकान्त थे। महाराज की सुख-सुविधा का ध्यान वहाँ के अध्यक्ष स्वामी त्रिविक्रमानन्द जी सदैव रखा करते थे तथा देश-विदेश से जो सब भक्त श्रीमाँ के इन वृद्ध शिष्य का दर्शन करने के लिए आया करते, उनके रहने की भी व्यवस्था करते थे।(क्रमशः)

निन्दा चौकीदार

निन्दा संतों की चौकीदार है। किसी अनधिकारी जीव को संतों के पास ठहरने नहीं देती। एक बार एक व्यक्ति ने डेरे में आकर माथा टेका और देखा कि बाबाजी अपने आसन पर विराजमान हैं। उसने कहा कि श्री गुरुग्रंथसाहिब जहाँ विराजमान है, आप वहाँ जमीन पर न बैठकर आसन पर बैठे हैं, क्या ऐसा उचित है? बाबाजी ने कहा, “भाई, मेरी और श्री गुरु साहिब की आपसी बात है, हमारी आपस में बनती है, मुझे उससे भय नहीं है। तुम्हें भय है, तो नीचे बैठो। पाठक को उसे पढ़ने के लिए जमीन के ऊपर ही गुरु साहिब के समक्ष बैठना पड़ता है। बात जमीन या ऊपर बैठने की नहीं। बात है श्री गुरु साहब नया संदेश दे रहे हैं, हम उसका आचरण करते हैं या नहीं।” और शुरू से ही सन्तों और शरीयत (बाहरी भाव) वालों का विरोध रहा है। वे साहब उठकर चलते बने। संत जिन्हें अनधिकारी जानते हैं, उन्हें अपने व्यवहार से निन्दा का अवसर देकर उनके मन में अविश्वास लाकर वापस भेज देते हैं। इससे तीन बातें सामने आती हैं—

१. सन्त अपनी निन्दा को चौकीदार मानते हैं।
 २. वे अनधिकारी जीव के आगे ऐसा व्यवहार करते हैं कि वह जीव रुक न पाये। यानि संत जिसे अपने मत में ठहराना चाहे, वही ठहर सकता है। यह संतों की मौज पर निर्भर है।
 ३. शरीयत के पाबंद और हकीकत के भेदी (संत) में विरोध सदा से चला आया है।
- दरे दरवेश दा दरबाँ न बायद।

बवायद ता सगे दुनिया न आयद॥

क्या फकीरों के दर पर द्वारपाल नहीं चाहिए? अवश्य चाहिए ताकि दुनिया के कुते न आ सकें।

जब कभी संत-महात्मा प्रकट होते हैं, वे कभी-कभी अपने आस-पास कुछ ऐसे सामान बना रखते हैं, जो संसारियों को ठीक नहीं लगते। इनका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उनकी शोभा और महत्ता सुनकर जो दुनिया के बंदे और माया के गुलाम उनके पास इकट्ठे हो जाते हैं, वे मक्खी की भाँति उड़ जायें और परमार्थियों की हानि न हो।

(बाबा बेफिक्रीशाह के उपदेशों से संकलित)

पृष्ठ ४६७ का शेष भाग

ब्र. रामकृष्ण आजकल रसोईघर में कार्यरत हैं। अतः वह अवश्य तुम्हारी अच्छी देखभाल करेगा। एक दूसरा ब्रह्मचारी बेल्ट लगाने आदि में मेरी सहायता कर रहा है।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि महेश अब काफी अच्छा है और डॉ. खेर एपेन्डिसाईटिस के आपरेशन के बाद पूर्ण स्वस्थ है और अपना कार्य पुनः आरम्भ कर दिया है। मेरी शुभकामनाएँ स्वीकार करना और अन्य सभी भक्तों को कहना। परमात्मा सदा तुम सभी पर सभी प्रकार की कृपा करें।

भगवदाश्रित
स्वामी यतीश्वरानन्द

पुनश्च : तुम्हरे रामकृष्ण को लिखे पत्र से यह जानकर कि पिछली एम.डी. परीक्षा में तुम दो सफल व्यक्तियों में से एक थे, बधाईयाँ। क्या तुम प्रथम थे? (क्रमशः)

समाचार और सूचनाएँ



रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा द्वारा अलमोड़ा इण्टर कॉलेज के परिसर में स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति का अनावरण



रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के द्वारा २३ जुलाई, २०२१ को १०.४५ बजे गवर्नमेंट इण्टर कालेज, अलमोड़ा के परिसर में फाइबर की ६.५ फिट की स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति का अनावरण सोभन सिंह जीना विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. नरेन्द्र सिंह भण्डारी के द्वारा किया गया। इसके अतिरिक्त ११ बजे कॉलेज के हॉल में ६.५ फिट के चित्र का अनावरण अद्वैत आश्रम, मायावती के अध्यक्ष स्वामी शुद्धिदानन्द जी महाराज ने किया।

यह कार्यक्रम रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के द्वारा आयोजित किया गया था। ध्यान रहे इसी हॉल में स्वामी विवेकानन्द ने १८९७ में २७ जुलाई और ३१ जुलाई को दो व्याख्यान दिये थे। कॉलेज के प्रिंसिपल ने इस हॉल का नाम 'स्वामी विवेकानन्द हॉल' रखने का प्रस्ताव दिया, जिसे उत्तराखण्ड के मुख्य शिक्षाधिकारी श्री हर्ष बहादुर चन्द ने अनुमोदित किया और अग्रसारित और अनुमोदित किया। समयानुसार एक प्रस्ताव शिक्षा संचालनालय को भी भेजा जायेगा।

रामकृष्ण कुटीर, अलमोड़ा के अध्यक्ष स्वामी ध्रुवेशानन्द जी ने इस अवसर पर उपस्थित सबका स्वागत किया। सभा में स्वामी शुद्धिदानन्द, प्रबुद्ध भारत के सम्पादक स्वामी वीरेशानन्द ने स्वामी विवेकानन्द उपदेशों और स्वामीजी

के जीवन में अलमोड़ा का महत्त्व पर व्याख्यान दिया। सभा को नगरपालिका परिषद के अध्यक्ष श्री प्रकाश चन्द्र जोशी ने 'स्वामीजी का हिमालय प्रेम' पर व्याख्यान दिया। इस कार्यक्रम को सफल बनाने में कॉलेज के प्रिंसिपल श्री मदन सिंह खेर, डॉ. जे. सी. भट्ट, डॉ. दिवा भट्ट, डॉ. चन्द्र प्रकाश फुलोरिया आदि ने सहायता की। अन्त में सबको प्रसाद वितरित किया गया।

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट में अन्तर्राष्ट्रीय आनलाइन संगोष्ठी का आयोजन हुआ

रामकृष्ण आश्रम, राजकोट ने १ से ७ जुलाई, २०२१ तक 'कोरोना के कहर के दौरान कैसे मानसिक शान्ति प्राप्त करें' नामक विषय पर एक अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया। इस संगोष्ठी में रामकृष्ण मिशन के प्रब्राह्म संन्यासियों द्वारा व्याख्यान दिये गये। आश्रम के सचिव स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने सबका स्वागत किया और प्रस्तावना के साथ व्याख्यान का सार-संक्षेप हिन्दी में प्रस्तुत किया। सभी व्याख्यान अंग्रेजी में दिये गये। उद्घाटन व्याख्यान रामकृष्ण मठ-मिशन के वरिष्ठ सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी ने किया। इस संगोष्ठी में स्वामी सर्वप्रियानन्द, स्वामी इष्टात्मानन्द, स्वामी कृपामयानन्द, स्वामी सर्वस्थानन्द, स्वामी निर्मलात्मानन्द और स्वामी चेतनानन्द जी ने व्याख्यान दिये। इस संगोष्ठी में २२ देशों के १७४५ लोगों ने पंजीकरण कराया। कुल १७०६३ लोगों ने इस संगोष्ठी को देखा।

३ जुलाई, २०२१ को कोलकाता में अमेरिका के कौसिल जनरल श्री पाट्टी हाफमैन ने बेलूड मठ का परिदर्शन किया।



कोरोना के कारण बेलूड मठ कई महीनों से बन्द था, लेकिन कोरोना-नियमों का पालन करते हुए गुरुपूर्णिमा को भक्तों के लिये खोला गया, जिसमें ११,५०० भक्तों ने मन्दिर-दर्शन किया। परम पूज्य संघाध्यक्ष और सभी उपाध्यक्ष महाराज लोगों ने इस पावन दिवस पर अपने शुभाशीर्वचन प्रदान किये।